THE FREE INDOLOGICAL COLLECTION

WWW.SANSKRITDOCUMENTS.ORG/TFIC

FAIR USE DECLARATION

This book is sourced from another online repository and provided to you at this site under the TFIC collection. It is provided under commonly held Fair Use guidelines for individual educational or research use. We believe that the book is in the public domain and public dissemination was the intent of the original repository. We applaud and support their work wholeheartedly and only provide this version of this book at this site to make it available to even more readers. We believe that cataloging plays a big part in finding valuable books and try to facilitate that, through our TFIC group efforts. In some cases, the original sources are no longer online or are very hard to access, or marked up in or provided in Indian languages, rather than the more widely used English language. TFIC tries to address these needs too. Our intent is to aid all these repositories and digitization projects and is in no way to undercut them. For more information about our mission and our fair use guidelines, please visit our website.

Note that we provide this book and others because, to the best of our knowledge, they are in the public domain, in our jurisdiction. However, before downloading and using it, you must verify that it is legal for you, in your jurisdiction, to access and use this copy of the book. Please do not download this book in error. We may not be held responsible for any copyright or other legal violations. Placing this notice in the front of every book, serves to both alert you, and to relieve us of any responsibility.

If you are the intellectual property owner of this or any other book in our collection, please email us, if you have any objections to how we present or provide this book here, or to our providing this book at all. We shall work with you immediately.

-The TFIC Team.

वर्द्धमान महावीर

निर्मल कुमार

की

दार्शनिक वार्ताओं का संकलन

निर्वाण समिति मुजफ्फरनगर के सौजन्य से

नेशनल प्रिंटिंग वर्क्स
(टाइम्स आफ इण्डिया प्रेस)

मूल्य : अमूल्य

प्राक्कथन

यह हमारे लिये अत्यन्त सौभाग्य का विषय है कि श्री निर्मल कुमार जैन भगवान महावीर के २५००वें निर्वाणोत्सव पर हमारे ही जिले में अतिरिक्त जिलाधीश (नियोजन) के रूप में रहे। समय-समय पर अनेकों आयोजनों में इनकी वार्ताएं सुनने को मिली जिनसे जनपद मुजफ्फरनगर के बौद्धिक जीवन के विकास में अभूतपूर्व योगदान मिला। लोग उनके ओजपूर्ण और मार्गर्भित विचारों को सुनकर अक्सर अचम्भित होते है कि इतनी अल्प आयु में उन्होंने कहां से इतना ज्ञान और गहरी नजर प्राप्त कर ली। विचारों की गहनता और अत्यन्त मौलिकता श्री जैन की विशेषता है परन्तु उनकी सबसे बड़ी विशेषता है किसी भी प्राचीन विचार को आधुनिक संदर्भ में रखकर आज के जीवन से उसका मूल्यांकन करने की। विद्वता, सहजता एवं आधुनिकता का ऐसा विचित्र समन्वय बहुत मुश्किल से देखने को मिलता है। श्री जैन निःसंदेह देश के एक अत्यन्त उच्चकोटि के मौलिक विचारक और ओजपूर्ण वक्ता हैं जो हिन्दी और अंग्रेजी दोनों भाषाओं पर समान अधिकार रखते हैं। यह प्रशासनिक सेवा का भी सौभाग्य है कि एक ऐसा सर्वथा मौलिक विचारक और अत्यन्त सहृदय मानव शासकीय सेवा को अपना जीवन अर्पित किये हुए है।

इस युवा कर्मयोगी ने हमें बताया कि किस तरह ऊंचे से ऊंचे

विचार भी रोजमर्रा के व्यवहार में उतारे जा सकते हैं। एक सजग रण-बांकुरे योद्धा की तरह इन्होंने समाज की नकारात्मक, निष्क्रिय और प्रमादमयी शक्तियों को ही नवजीवन और नये राष्ट्र का निर्माण करने वाली शक्तियों के स्रोत में बदला है। वैचारिक मौलिकता के साथ यह विलक्षण व्यावहारिक प्रतिभा देकर ईश्वर ने इन पर जो असीम अनुकम्पा की है उसके उपयुक्त राष्ट्र और मनुष्य जाति की सेवा का व्रत जगाकर पृथ्वी माता ने इन्हें इन महान गुणों को बिना विचलित हुए धारण करने की योग्यता भी दी है। वृक्षारोपण अभियान में हमें इसका प्रमाण देखने का अवसर मिला। जहां दो वर्ष पूर्व केवल तीस हजार वृक्ष साल भर में लगे थे और जहां का प्रगतिशील किसान वृक्षों को खेती का दुश्मन समझता था उस जनपद में इन्होंने एक ही वर्ष में साढ़े पांच लाख वृक्ष लगवाये। हम लोगों ने देखा किस तरह इन्होंने गांव-गांव में घूमकर लोगों को सुन्दर फलदार वृक्ष लगाने का आव्हान किया। आज इस जनपद का जनमानस जानता है कि सुन्दर प्रकृति मनुष्य के हृदय और मस्तिष्क के मैल धो देती है।

हमेशा प्रसिद्धि से दूर रहने वाले, कर्तव्यनिष्ठ इस युवा अधिकारी की वार्ताएं, इनकी अपने प्रकाश को छुपाये रखने की प्रवृत्ति के कारण, छुपी न रह जायं इसी उद्देश्य को लेकर भारतीय साहित्य परिषद् ने सप्रू हाउस दिल्ली में अपूर्व दार्शनिक संध्या आयोजित की जिसका उद्घाटन माननीय डा. कर्णसिंह (मंत्री भारत सरकार) और सभा-पतित्व राष्ट्रकवि श्री मोहनलाल द्विवेदी ने किया। इसमें देश के अनेक लब्ध प्रतिष्ठित विद्वानों ने भाग लिया। भारतीय साहित्य परिषद् के कुछ कर्मठ सदस्य हमारी तरह श्री निर्मल कुमार की अभूतपूर्व प्रतिभा का चमत्कार देख चुके हैं। अकेले निरन्तर सत्य अन्वेषण में लगी इस सर्वथा मौलिक प्रतिभा को उन्होंने प्रमुख वक्ता बनने पर मजबूर

किया। उनकी वही वार्ता इस संकलन का प्रमुख अंग है।

हमें विश्वास है कि उनके विचारों से भगवान महावीर का चिन्तन आधुनिक युवा वर्ग के लिए ग्राह्य और अर्थपूर्ण हो सकेगा।

पदाधिकारी एवं सदस्य महावीर निर्वाण समिति, मुजफ्फरनगर:

योगेन्द्र नारायण, I.A.S., जिलाधिकारी एवं संरक्षक
विद्याभूषण, अध्यक्ष सीटी बोर्ड, कार्यवाहक अध्यक्ष
गुलशन राय जैन, उपाध्यक्ष
उमाशंकर पाठक, परियोजना अधिकारी, मंत्री
रामपाल भारद्वाज, I.A.S., कमिश्नर (रि०)
जगबीर सिंह, अध्यक्ष जिला कांग्रेस
शफ़कत जंग, M.P.
विजयपाल सिंह, M.P.
वरुण सिंह वर्मा, अध्यक्ष जिला परिषद्
हुकुम सिंह, M.L.A.
मलखान सिंह, M.L.A.
चितरंजन स्वरूप, M.L.A.
राजरूप सिंह वर्मा, सम्पादक, दैनिक देहात
कुसुम शर्मा, मंत्री अन्त० महि० वर्ष समिति
त्रिलोकचन्द्र जैन, अध्यक्ष, इन्जीनियरिंग इन्डस्ट्रीज़ एसोसियेशन

कृतज्ञता

इन वार्ताओं को पुस्तकाकार करने में, फाइनल प्रूफ चैक करने में तथा इसके प्रिंटिंग को अपनी कुशल देखरेख में सुरुचिपूर्ण और शुद्ध करने में नियोजन विभाग के श्री विष्णु शर्मा एवम् श्री श्यामलाल जैन ने जो सराहनीय कार्य किया है उसके लिये हम उनके अत्यन्त कृतज्ञ हैं।

साहू रमेशचन्द्र, मैनेजर, टाइम्स आफ इण्डिया ने इन वार्ताओं के प्रकाशन में स्वयं रुचि ली है और अस्वस्थ होते हुए भी पग-पग पर इसके सुन्दर प्रकाशन के लिये निर्देश दिये हैं। श्री निर्मल कुमार के गहन और मौलिक चिन्तन तथा विचारों को जिस मुक्त हृदय से उन्होंने सराहा है वह उनकी अपनी दार्शनिक नज़र, साहित्यिक चेतना और स्वतंत्र चिन्तन की द्योतक है। उनसे अनेक रूपों में जो सहयोग मिला है हम उसके लिये अत्यन्त कृतज्ञ हैं।

हिन्दी के लब्ध प्रतिष्ठित उपन्यासकार एवं दार्शनिक पद्मभूषण श्री जैनेन्द्र कुमार के हम अत्यन्त अनुग्रही हैं। उन्होंने इन वार्ताओं को चाव से पढ़ा और इन सर्वथा मौलिक एवं सारगर्भित विचारों का स्वागत किया है। यह उनके हृदय की सजीवता और सत्यग्राहिता का परिचायक है।

महावीर निर्वाण समिति
मुजफ्फरनगर
(उ. प्र.)

स्वागत

हिन्दी साहित्य और विचार क्षेत्र मे इस नये हस्ताक्षर और नवीन प्रतिभा के आगमन की सूचना देते एवं स्वागत करते मुझे आन्तरिक हर्ष है। पुस्तिका यह संक्षिप्त है, केवल दो वार्ताएँ और एक काव्यकृति सकलन मे गर्भित है। परन्तु प्रतिभा की छटा हठात् पाठक को प्रभावित किये बिना न रहेगी।

गत दिवाली से दिवाली तक का वर्ष भगवान महावीर निर्वाण की पच्चीसवी शताब्दी का सम्पूर्ति सम्वत्सर था। इस महावसर को जैनो ने उसी उल्लास से मनाया। राष्ट्रभर का उसमे योग रहा। ये वार्ताएँ और काव्यकृति उसी उपलक्ष्य मे लेखक से अनायास प्राप्त हुई और अब प्रकाश मे आ रही है। वार्ताकार श्री निर्मल सम्प्रदाय के नाते जैन नही है, इसलिए वह विशेषण उन पर तनिक भी सीमा नही लाता। उनकी विद्वत्ता अबाधित और सौन्दर्यबोध सक्त है। उन्होंने हिन्दी मे काफी लिखा है और समान क्षमता से अंग्रेजी मे भी वह लिखते रहे है। एक वृहद् उपन्यास तैयार है और काव्यराशि की तो सीमा नही। पर उस सब सामग्री के प्रकाशन के विषय में वे तनिक भी आतुर नहीं, प्रत्युत विमुख रहे है। अचरज होता है कि वरिष्ठ और व्यस्त प्रशासनाधिकारी होने पर भी वे इतना विपुल और श्रेष्ठ साहित्य कैसे लिख पाये।

मै सोचने लगा था कि जैन धर्म पथ बन गया है, दर्शन मत भर रह गया है। सब नियत और नियुक्त है, कुछ निगूढ बचा नही है जहां से नव नवोन्मेष फूटे और नई उद्भावनाएं जगे। निर्मल जी की महावीर जीवन और तत्त्व की मौलिक व्याख्याओं ने मेरी धारणा को झकझोर डाला है। जैन दर्शन के अनेकानेक पारिभाषिक शब्दों के प्रतीक मर्म का इस रूप में उन्होंने उद्घाटन किया है कि

रूढ़ार्थ छिलके की तरह उतर रहता और वह गूढ़ार्थ सर्वथा सम्प्रदायतीत और सार्वजनीन हो जाता है।

इन पंक्तियों में पाठक कुछ बहुत क्रान्तिकारी और चमत्कारी प्रमेय पायेंगे। लेखक का मानना है कि "मनोवैज्ञानिक मानस दार्शनिक मृत्यु के लिए विह्वल बना स्वयं आहुत होता है तो आत्मा का सूर्य उदय में आता है। यही दार्शनिक मृत्यु है जिसकी स्थापना महावीर ने निर्वाण शब्द के द्वारा की"। जैन पान्थिकों के आगे उनका प्रश्न है "क्या महावीर की वाणी में सामर्थ्य नही है कि वह कर्मशक्ति को प्रेरित करे? फिर जैन विवेचना असमर्थ क्यों है?" "बौद्धिक ज्ञान का व्यवहारीकरण तप है"। "विपरीतों को जीतने का मार्ग विरोध नही। वैपरीत्य को अनावश्यक बनाना है"। "गहन मनोविज्ञान बतायेगा कि सांकेतिक 'गृहत्याग' सफल जीवन के लिए आवश्यक है।" "इन सांसारिक सम्बन्धों के महत्वहीन रूप को समझो, फिर घने वनों में अपनी अकेली आत्मा पर समस्त उपद्रवों को सहो तब आत्मा मे धावक जगेगा। आत्मा पराक्रमी, और तेजोमय होगी। तभी ज्ञान का यज्ञ शुरू होगा"। "एक जीवन है जो जीवशास्त्र का विषय नही, वह बढ़ने, घटने, उगने जैसी क्रिया मे मग्न है" । "यह कहना गलत होगा कि पत्थर मे जीव है, तीर्थंकर विचार के अधिक निकट यह है कि पत्थर स्वयं जीव है"। इस प्रकार की अनेक स्थापनाएँ है जो सहसा हमें चकित कर देती है। उनके मनन से स्पष्ट हो जाता है कि प्रवक्ता ने पूर्व और पश्चिम दोनों के दार्शनिक मन्तव्यों का तुलनात्मक अध्ययन करके अपने निष्कर्षों को उपलब्ध किया है। मुझे विश्वास है इस लेखक की वाणी और लेखनी प्रबुद्ध-जनों का ध्यान आकर्षित करेगी और इस नवाविष्कृत साहित्यकार को समुचित मान्यता प्राप्त होगी।

जैनेन्द्रकुमार

समर्पण

मां और पिता जी को

जिन्होंने संयम और शील का जीवन जीकर
हम भाई-बहनों को धर्म का उपदेश कर्मों से दिया।

ज्यों-ज्यों जीवन आगे बढ़ा
मेरे नेत्र

सम्यक् चरित्र के ऐसे नमूने देखने को तरसने लगे।
तब मैंने जाना विधि ने कैसे बिन मेरे मांगे

ये मनुष्य रत्न

हमारे ही घर मे रख दिये थे।

"निर्मल"

यह वार्ता भारतीय साहित्य परिषद् द्वारा भगवान महावीर के २५०० वें निर्वाणोत्सव पर सप्रू हाउस, नई दिल्ली में दिनांक २१ जनवरी, १९७५ को आयोजित सभा में दी गई।

विशेष विवरण

परिचर्चा
'वर्तमान समाज के संदर्भ में वर्द्धमान महावीर और उनका दर्शन'

उद्घाटन
डॉ. कर्णसिंह, मंत्री, स्वास्थ्य एवं परिवार-नियोजन

मुख्य अतिथि
श्री केदारनाथ साहनी, महापौर, दिल्ली

अध्यक्ष
राष्ट्रकवि पं. सोहनलाल द्विवेदी, अध्यक्ष, केंद्रीय भारतीय साहित्य परिषद

प्रमुख वक्ता
श्री निर्मल कुमार जैन (जैन दर्शन के मर्मज्ञ विद्वान्)

सम्भागी
श्री जैनेन्द्र कुमार (प्रख्यात साहित्यकार)
डॉ रामचन्द्र पाण्डेय (प्रसिद्ध विचारक)
श्री अक्षयकुमार जैन (प्रधान संपादक, नवभारत टाइम्स)

अध्यक्ष
श्री यशपाल जैन (भारतीय साहित्य परिषद, दिल्ली प्रदेश)

मंत्री
श्री जीतसिंह 'जीत' (भारतीय साहित्य परिषद, दिल्ली प्रदेश)

स्वागत समिति
श्री शान्तिलाल जैन, श्री मलेकचन्द जैन, श्री महावीर प्रसाद जैन

सह-संयोजक
श्री विनोद विभाकर

संयोजक
सुभाष जैन

वर्तमान समाज के संदर्भ में

वर्द्धमान महावीर और उनका दर्शन

अध्यक्ष महोदय, विद्वजन, सम्मानित देवियो और सज्जनों,

आज की इस वार्ता में मैंने आधुनिक जीवन की कुछ बेसिक समस्याएं चुनी हैं जिनसे प्रत्येक मनुष्य परेशान है और यह बताने की चेष्टा की है कि उनका हल महावीर के विचारों में है। किसी जन्मजात विश्वास को मैं व्यक्त नहीं करना चाहता। उन समस्याओं का हल ढूंढने की चेष्टा सभी देशों में मनीषी कर रहे हैं। उनकी चेष्टाओं की ओर भी मैं आपका ध्यान खींचूंगा और गहराइयों के इस मंथन में आप पहचान लेंगे कि उनके हल निदान नहीं हैं।

आज के मानव की सबसे बड़ी समस्या है व्यक्तित्व का विघटन (Loss of individuality)। काफ़का, टाल्सटाय, दोस्तोवस्की से लेकर हेमिंग्वे, सार्त्र, पास्टरनेक सभी ने इस पीड़ा का अनुभव किया। कितना दारुण है जीना जब भीतर जीवन एक संगठित धारा के रूप में महसूस न होकर, बिखरे पारे जैसा लगे। ऐसा क्यों है? इसका निदान क्या है? दूसरी समस्या जो मैंने चुनी है वह आधी मानवता की सबसे ज्वलन्त समस्या है। वह है नारी विक्षोभ। शायद पहली बार इतिहास में नारी एक सामूहिक विद्रोह की तैयारी कर रही है। लिब मुवमेण्ट, नारी शक्ति जागरण आदि लक्षण हैं एक घिरकर आते भयानक तूफान के। आज हम इसकी भीषणता को नहीं महसूस कर रहे हैं। परन्तु शायद कोई भी खतरा मनुष्य जाति पर इतना भयानक नहीं है जितना यह। आज नारी रुष्ट हो गई है। आज प्रश्न कर रही

है वह धर्म, संस्कृति, दर्शन सबसे कि आखिर उसे घटिया क्यों समझा गया? उसे नरक का द्वार क्यों समझा गया? वह पूछ रही है उसका स्थान क्या है? उसे संतोषजनक उत्तर न मिलेगा तो उसकी संतति उसका क्लेश लेकर पैदा होगी। इस समस्या पर महावीर के विचार बिल्कुल मौलिक और सत्य के निकट हैं। उनका सत्य-अन्वेषण कटु-यथार्थ को समन्वित कर रहा है। उन्होंने न तो नारी उपासकों का मार्ग चुना न उनका जिन्होंने नारी को नरक का द्वार माना। उस जिनपुरुष ने यथार्थों से मुख नहीं मोड़ा। उसने वे आदि भूलें बताईं जिनके कारण सघर सत्य इतने कटु यथार्थों में टूट गया। यदि महावीर के नारी के प्रति विचार सही तरह से अपना लिये जाते तो आज यह स्थिति न होती। आज भी यदि उन्हें समझ लिया जाय तो लिब मुवमेण्ट आदि के द्वारा मानवीय शक्ति व्यर्थ न होगी। इस समस्या का, पुरुष-नारी के बीच द्वैत भाव का, अन्त हो जायेगा।

एक प्रमुख प्रश्न आज मनुष्य के सामने यह है कि वह है क्या? एग्जिस्टेंसियलिस्ट्स (Existentialist) यह प्रश्न पूछ-पूछ कर मनस-उद्वेलित कर रहे हैं। हाइनरिच हाईन ने ये प्रश्न पूछे साधारण लोगों से। और किर्केगार्ड, जासपर्स, सार्त्र, हूसर्ल ने ये प्रश्न हर साधारण क्लर्क, व्यापारी, वकील, पत्रकार के रोजाना के प्रश्न बना दिये हैं। शंकराचार्य ने "अहं ब्रह्मोस्मि" कहकर इस प्रश्न को हमेशा के लिये शान्त करना चाहा था। पर प्रश्न ऐसे शान्त नहीं होते। बर्फ पर फिसलती वर्फ की एक गेंद की तरह मनुष्य की आत्मा उलझनों, दुर्वासनाओं, तंगियों, अपराधों का एक गोला बनती जा रही है। उसका नित्य, शुद्ध, बुद्ध रूप कहीं देखने में नहीं आता। इस विषय पर महावीर किस तरह सर्वथा मौलिक और यथार्थवादी हैं यह भी इस वार्ता का विषय है।

मैं यह भी कहना चाहूंगा कि महावीर वैसे सात्विक विचारक नहीं हैं जो केवल गुणों से ही व्यक्तित्व की रचना करते हैं। वे काले

पानी का संगम रचने वाले तीर्थंकर हैं। वे सर्वथा व्यवहारिक हैं। जब जीवन दुर्गुणों से भर जाय तो कैसे उन दुर्गुणों में भी चरित्र का निर्माण सम्भव है—यह अनोखी कीमियागरी महावीर बता रहे हैं। आज हम जो कुछ हैं उसे नजरअन्दाज करके चरित्र का महल नहीं बनेगा। उसे मजबूत आधार देने के लिये हमें अपने दुर्गणों को दुर्गुणों से अप्रभावी (Neutralize) करना होगा। विष को विष से मारना सीखना होगा। दुर्गुण एक दूसरे को अप्रभावी कर देते हैं तो स्वतः गुणों में रूपान्तरित हो जाते हैं।

एक और प्रमुख विषय महावीर के संदर्भ में है अहिंसा का। मनुष्य जाति दो टुकड़ों में बंटी है—मांसाहारी (carnivorous) और मनुष्यभक्षी (cannibal)। कुछ तो मांस खाते हैं पशुओं का। परन्तु जो अहिंसावादी हैं उनमें मानसिक हिंसा है मांसाहारियों के प्रति। अतः उनकी अहिंसा और भी जघन्य हिंसा है। वे मानसिक तल पर मांसाहारियों से पशुवध का बदला ले रहे हैं। उनके प्रति तीव्र घृणा और क्रोध है उनमें। इस तरह केवल पशु मांस का त्याग मनुष्य को उत्कृष्ट स्थिति में नहीं ला सकता। यथार्थ यह है कि यह उसे और भी निकृष्ट बना रहा है। इसका कारण है कि हम अहिंसा को सही अर्थों में नहीं समझ सके। मनुष्य की आत्मा आक्रामक है। इस आक्रामकता का उद्देश्य वह आदिकाल में नहीं समझा और इसकी अभिव्यक्ति उसने पशुवध में ढूंढ ली। पशुवध को उसने रोका तो यह आक्रामकता पशुवध करने वालों के प्रति प्रतिहिंसा में बदल गई। महावीर कहते हैं कि वह जो आक्रामकता का सही इस्तेमाल करना जानता है केवल वही हिंसा से मुक्त हो सकता है। इस आक्रामकता का उद्देश्य है निरन्तर उच्च स्थिति के लिये आत्मा का संघर्ष। जिस तल पर वह है वहां उसे दार्शनिक मृत्यु को प्राप्त होना है जिससे उसका पुनर्जन्म हो आन्तरिक सौन्दर्य में। इस अनोखी मृत्यु को प्लेटो ने भी जाना था। महावीर की अहिंसा केवल हिंसा का निषेध नहीं, आक्रामकता का सही उपयोग है। वह सिंह

पुरुष कह रहा है कि आक्रामकता का सही उपयोग नहीं करोगे तो अहिंसा तुम्हें और भी निम्न कोटि का हिंसक बना देगी। महावीर ने मोक्ष के लिये आक्रमण किया। वे passive नहीं हैं। उन्होंने मनुष्य की आत्मा में बसे इस आक्रामक तत्व को सही दिशा की ओर मोड़ा। उनकी अहिंसा का सार यही है।

इसी तरह ब्रह्मचर्य उनके लिये केवल सेक्स से विमुखता नहीं है। अपितु यह उस कौमार्य स्थिति में आत्मा का पुनः आरूढ़ होना है जहां से वह चार निम्न स्थितियों में गिरी थी। वे थी लज्जा के द्वारा साथी को मोहित करना, फिर लज्जा का त्याग करके यौन सुख पाना, फिर यौन से घृणा का भाव और उसके साथ ही यौन साथी के प्रति प्रतिहिंसा। महावीर ऐसे ब्रह्मचर्य को दुराग्रह मानते हैं। यह स्थायी नहीं हो सकता। शुरू यौवन में आत्मा सुन्दरम्स्वरूप है। उसके बाद वह प्रजनन हेतु एक निम्न स्तर पर उतरती है। आत्मिक सुन्दरता लज्जा में बदल जाती है। लज्जा आकर्षित करती है। यौन चरम सुख उस लज्जा की मृत्यु है। महावीर कहते हैं कि आत्मा निर्लज्जता से न तो घृणा करे न प्रतिहिंसा। अपितु पुनः उसी सुन्दरम् की प्राप्ति हेतु तप करे। यही सच्चा और स्थायी ब्रह्मचर्य है। यही सुन्दरम् की प्राप्ति उनसे वस्त्र त्याग कराती है। महावीर का मार्ग आत्मा को निम्न तलों पर neutralize करना है जिससे वह उच्च तल पर जग सके। इसीलिये उन्होंने कहा कि इस एक दुर्जय आत्मा को जीत लेने से सब कुछ जीत लिया जाता है।

आत्मा या जीव

मनुष्य के जिस व्यक्तित्व का विघटन आज पूरे बौद्धिक जगत को क्लान्त कर रहा है वह व्यक्तित्व है क्या? शेक्सपियर ने कहा कि हम अस्तित्व का एक क्षण हैं जिसे अज्ञान का अंधेरा घेरे हुए है। वैज्ञानिक दृष्टि से यदि हम देखें तो भी हम पाते हैं कि हमारा जीवन कुछ वर्षों की एक कहानी है। कहां से हम आये और कहां चले गये इसका उत्तर हमें विज्ञान नहीं देता। मनोवैज्ञानिकों ने विशेषकर फ्रायड और जुंग ने इस प्रश्न का उत्तर देने की भरसक चेष्टा की और निःसंदेह मनुष्य समाज उनकी खोजों का ऋणी है। जुंग ने अपने क्लिनिक में की गई खोजों के आधार पर सिद्ध किया कि मनुष्य का व्यक्तित्व चेतन और अचेतन इन दो भागों में बंटा हुआ है। चेतन तो व्यक्तित्व का वह अंग है जिसे मनुष्य सोच-समझकर चुनकर अपना बनाता है। यह उसके विचार, भावनाओं, अनुभव, इच्छाओं और आकांक्षाओं का वह समूह है जो उसने अपने लिये चुनी है। अचेतन उसमें सूक्ष्म रूप में संचित मनुष्य जाति का इतिहास है। वह सभी शक्तियां जिन्होंने कभी महाभारत और रामायण की लड़ाइयां लड़वाकर मनुष्य को दास बनाया हमारे अचेतन में संचित हैं। एक जाति ने दूसरी जाति का शोषण किया—ये सभी घटनाएं छोटी-बड़ी शक्तियों का एक सुप्त समूह बनकर मनुष्य के अचेतन में पड़ी हैं। जैसे-जैसे मनुष्य बड़ा होता जाता है उसके चेतन पर अचेतन का असर बढ़ने लगता है। धीरे-धीरे उसका वह चेतन व्यक्तित्व जो उसने अपने लिये चुना था दब जाता है। और अचेतन की शक्तियां विकसित होकर उसमें जोर मारने लगती हैं। यही कारण है कि मनुष्य में धार्मिक असहिष्णुता, पारी-

वारिक कलह, जातीय बैर आदि शक्तिएं विना उसके चाहे भी शक्तिशाली हो जाती है।

मनुष्य का व्यक्तित्व केवल चेतन और अचेतन में ही नही टूटा है। इसे एक विशाल ईश्वरीय शक्ति सर्प की तरह लपेटे हुए है। इसका नाम जुग और फ्रायड ने लिबिडो (Libido) रखा जिसका संस्कृत पर्यायवाची जुग के अनुसार लोभार्थनि है। जुग कहता है कि यह वही शक्ति है जो सूर्य मे है और जिसे श्वेताश्वर उपनिषद् मे रुद्र कहा है। यह वह शक्ति है जो शिशु मे प्रगट होती है तो उसके शरीर का पोषण करती है। युवा व्यक्ति मे यह शक्ति वासना, कामुकता बन जाती है। यही शक्ति कभी आगे चलकर घोर वासना विरोधी बन जाती है। यह शक्ति जब दुनियां की चोट खाकर और प्रेम मे पराजित होकर अपने ही ऊपर लौट आती है तो व्यक्तित्व रुक जाता है। घड़ी की सुइएं चलती है परन्तु आत्मा के लिये समय रुक जाता है। अधिकांश लोगों का जीवन यौवन की कुछ दिनों की चहल-पहल के बाद इसी तरह बन्द हो जाता है। तब उनकी आत्मा को यह लिबिडो (Libido) एक भयानक सर्प बनकर जकड़ लेती है जिसके पाश मे घुटती हुई हमारी आत्मा हर कीमत पर मुक्ति चाहती है। यदि पाप करके आनन्द की उसे कुछ सांसें मिल सकें तो वह उसके लिये भी तैयार हो जाती है।

मनोविज्ञान मनुष्य की आत्मा में केवल इतनी ही गहराई तक झांक पाया है। इससे आगे अभी उसकी पहुंच नही हो सकी। परन्तु शंकराचार्य, काण्ट, प्लेटो, हिगल, ब्रेडले आदि दार्शनिकों ने एक दूसरी ही तरह की आत्मा का जिक्र किया है। उनके अनुसार मनोवैज्ञानिक जुग और फ्रायड जिसे आत्मा कह रहे है वह माया है, प्रपच है। मनुष्य की आत्मा इससे परे है और वह नित्य, शुद्ध, बुद्ध और मुक्त स्वभाव है। वह ब्रह्म है। वेदान्तियों की यह बात सुनने में बहुत सुन्दर लगती है और अधिकांश बुद्धिजीवी वर्ग आत्मा की इस परिभाषा को स्वीकार

करता है क्योंकि इसमे उन्हे गौरव का अनुभव होता है। मनुष्य होने में सम्मान महसूस होता है। मगर वास्तव मे यदि हम देखे तो साधारण मनुष्य का ज्ञान आत्मा के सम्बन्ध में फ्रायड और जुग से आगे नही बढ़ सका। जिस परम सत्य स्वरूप आत्मा का जिक्र वेदान्त तथा अन्य प्रबुद्ध दर्शन करते है वह सर्वसाधारण के अनुभव की चीज नही है। साधारण व्यक्ति अपनी आत्मा को जिस रूप मे महसूस करता है वह वही रूप है जो फ्रायड और जुग ने देखा। इसमे सदेह नही कि वह मिथ्या है। वह सत्य की विकृति है। परन्तु उससे आख मीच कर हम सत्य की प्राप्ति नही कर सकते। इस मिथ्या स्वरूप का लय किये बिना उस दिव्य आत्मा का साक्षात्कार असम्भव है। यही बात कहकर महावीर इन सभी दार्शनिकों से अलग हो जाते है। यह बात ध्यान मे रखने योग्य है कि बुद्ध ने आत्मा के सम्बन्ध में अनेक विवादो को सुनकर इस झगडे में पड़ने से इन्कार कर दिया था कि आत्मा अमर है या नही। उन्होंने आत्मवादियों के मत का खण्डन निम्न वाक्य से किया था, "हम उसी नदी में दो बार प्रवेश नहीं कर सकते।" मनुष्य के विचार, भावनाएं, इच्छाए प्रतिपल बदलती रहती है फिर यह कहना कि उसकी आत्मा अमर है हास्यास्पद है। भगवान महावीर ने बुद्ध का मार्ग भी नही अपनाया। उन्होने इन अनेको उग्रवादो के बीच एक समन्वय प्रस्तुत किया जो आज भी उतना ही उपयोगी है। वास्तव मे भगवान महावीर ने विज्ञान और मनोविज्ञान की उपेक्षा करके किसी दर्शन का मार्ग प्रशस्त नही किया। उनका दर्शन विज्ञान और मनोविज्ञान के मार्ग पर चलकर प्राप्त की गई आगे की एक मजिल है।

इस बात को लेकर अनेकों ने जैन विचारधारा का मजाक उड़ाया है कि जैन यह कहते है कि आत्मा जिस शरीर मे होती है उसी शरीर का आकार ग्रहण कर लेती है हाथी के शरीर मे हाथी जैसा और चीटी के शरीर में चींटी जैसा। वेदान्तियों ने तर्क किया कि जो चीज घटती बढ़ती है वह आत्मा हो ही नही सकती। यह कोई नई

बात नही है। उनसे बहुत पहले वेदों में भी यह बात कही गई है। इस बात से भगवान महावीर भी बहुत अच्छी तरह परिचित थे। परन्तु फिर भी उन्होंने कहा कि आत्मा शरीर का आकार ग्रहण कर लेती है। एक ज्ञानी पुरुष जब किसी बात को कहता है तो अल्पज्ञानियों को उसकी आलोचना में जल्दबाजी नही करनी चाहिये अन्यथा ज्ञान की जगह ज़िदों की लड़ाई शुरू हो जाती है और उस ज्ञानी के बाद सारा तेज ज़िदों के युद्ध मे बह जाता है।

दरअसल महावीर जिस घटने-बढ़ने वाली आत्मा का ज़िक्र कर रहे हैं वह मनोवैज्ञानिक तत्व की आत्मा है जिसका ज़िक्र फ्रायड और जुंग कर रहे हैं। यह शरीर मे आत्मसात है, शरीर की पीड़ा को अपनी पीड़ा समझती है। शरीर मे विचारों और शब्दों से इस तरह जुड़ी है कि शरीर के कण-कण में व्याप्त है। यह वही आत्मा है जिसे जुंग ने चेतन अचेतन और लिबिडो का संगठन कहा है। बिना इसको जाने कोई उस अजर-अमर आत्मा को नही जान सकता। महावीर का कहना बस इतना ही है। इस तरह कहने वाले महावीर अकेले नहीं हैं। वेदान्तियों से पहले श्वेताश्वर उपनिषद् में भी इस मनोवैज्ञानिक आत्मा के लिये कहा गया—"प्रत्येक प्राणी में वह उस प्राणी के आकार के अनुसार रूप धर कर छुपा है, वह परमेश्वर हम सबको अपनी गुंजलक में लपेटे हुए है। उसे जाने बिना हम अमरता को नही जान सकते।"

महावीर और उपनिषदों के महर्षि एक ही बात कह रहे हैं—आज जो कुछ तुम हो, चाहे जितने भी विकृत हो, उसे बिना जाने तुम अमर आत्मा को नही जान सकते। महावीर कहते है कि इस विघटित और बिखरी हुई आत्मा के टुकड़ों को पास-पास रखो, मनन करो कि यह टुकड़े हुए क्यूं, कौन से गलत रास्ते हमने चुन लिये? इस तरह तुम अपने अतीत की भूल सुधारते हो। वे शक्तिएं जो गलत रास्तों पर लग गई सही रास्ते पर आ जायेंगी। तब यह मनोवैज्ञानिक आत्मा टूटेगी नही। आत्मा का विघटन रुक जाएगा। इसके बाद वह स्थिति होगी जहां इस

तरह एक सूत्र में पिरोई हुई यह आत्मा एक दार्शनिक मृत्यु के लिये व्यग्र हो उठेगी। यह दीप बुझ जाना चाहेगा। इसकी आकांक्षाएं, वासनायें, स्वप्न, विचार, भावनायें सभी इसके साथ लुप्त हो जाना चाहेंगी। वह क्षण होगा एक नई सुबह का। अलबर्ट स्वेत्जर आदि पाश्चात्य विद्वान निर्वाण की इस परिभाषा से बहुत परेशान हुए थे और उन्होंने महावीर के विचारों को यह कहकर ठुकरा दिया कि ये हमें शून्य की ओर ले जाना चाहते हैं। परन्तु उन्होंने शायद पढ़ने में जल्दबाजी की या वह अपने यूरोपीय क्लासिकी पाठ को बहुत जल्दी भूल गये। महावीर ने कोई नई बात नहीं कही थी। इस दार्शनिक मृत्यु का ज़िक्र तो प्लेटो ने भी किया था। इसके मायने प्लेटो ने भी बतलाये थे। उसने कहा था कि इसके मायने शून्य में खो जाना नहीं है। जैसे नीचे की मंजिल में टेप बन्द कर दें तो ऊपर मंजिल में पानी चढ़ जाता है, उसी तरह जब मनोवैज्ञानिक आत्मा एक सूत्र होने के बाद स्वतः मृत्यु के लिये, निर्वाण के लिये, व्यग्र हो उठे तो आत्मा का वह दीप बुझ जाएगा जिसे हम आज तक आत्मा के रूप में जानते रहे हैं। परन्तु इसके मायने यह नहीं कि आत्मा शून्य में खो जाएगी। इसके मायने है कि पानी किसी ऊंचे तल पर चढ़ जाएगा। प्लेटो ने कहा था कि इस तरह मरकर मेरी आत्मा सत्यं शिवं सुन्दरम् के बीच पुनर्जन्म लेगी। यही बात महावीर ने और भी सरल ढंग से कही थी। परन्तु इसके साथ उनकी शर्त थी कि पहले मनोवैज्ञानिक आत्मा के टुकड़ों को जोड़कर एक करना होगा। जब तक मनोवैज्ञानिक आत्मा की सूरत जुड़कर एक नहीं हो जाती तब तक कोई भी उच्च आत्मा हममें नहीं जग सकती। क्योंकि एक होने तक मनोवैज्ञानिक आत्मा में एक ही तड़प रहेगी वह यह कि किस तरह मैं एक हो जाऊं। उससे आगे की बात, निर्वाण की बात, वह सोच भी नहीं सकती जबतक उसके टुकड़े जुड़ न जायं। उसके टुकड़े जुड़ते हैं सम्यक् दर्शन, सम्यक् ज्ञान और सम्यक् चारित्र्य से। भगवान महावीर कहते हैं कि सत्यग्राही बनो। यह टूटी हुई आत्मा आप ही बताती चलेगी कि किस तरह उसे

जोड़ा जाय। यह आप ही बनाती चलेगी कि किस समय क्या धर्म है, क्या सच्चा दर्शन और क्या चरित्र है।

परन्तु शायद पिछले ढाई हजार वर्षों में बुद्धिजीवियों के लिये इतना धैर्य रखना बहुत कठिन रहा होगा और उन्हें मुक्ति के लिये छलांग लगाना ज्यादा श्रेयस्कर लगा। उन्हें लगा कि महावीर का संयम बहुत कठिन है। और जब आत्मा ही ब्रह्म है और सर्वथा शुद्ध और बुद्ध है तो फिर इतना कठिन श्रम करने की जरूरत क्या है? किसी और छोटे रास्ते से उसे जरूर लाया जा सकता है। उन्होंने कोशिश की। परन्तु उनकी कोशिश भारत की गुलामी, दरिद्रता, शोषण और सरल दीन लोगों पर अत्याचार की कहानी बन गई। कापालिक, अघोरी तथा अन्य तांत्रिक विद्याएं प्रचंड होती गईं। सामाजिक जीवन में, व्यापार में, नैतिकता क्षीण होती गई। इतना बलिदान देकर भी वह अजर अमर आत्मा न मिल सकी। अब दो भयानक विश्वयुद्धों के बाद मनुष्य आत्मा की भीषण टूट-फूट का अध्ययन करके फ्रायड और जुंग ने रोमांचक तथ्य प्रस्तुत किये। इस पृष्ठभूमि में पहली बार महावीर को सही ढंग से समझने का हमें अवसर मिला है।

एक बात और सामने आती है वह यह कि महावीर कहीं पर आत्मा शब्द का प्रयोग कर रहे हैं और कहीं पर जीव शब्द का और दोनों शब्दों के अर्थ एक ही लगा रहे हैं। तो क्या वे जीव को आत्मा कह रहे हैं? जीवित प्राणियों को इतना अधिक महत्त्व महावीर क्यों दे रहे हैं? वेदान्तियों ने तो जीवन को मृत्यु की तरह एक स्वप्न कहा है फिर जीव आत्मा कैसे हो सकता है? यहां पर भी यह बात बहुत से श्रोताओं को शायद आश्चर्यमिश्रित प्रसन्नता दे कि ढाई हजार वर्ष पूर्व महावीर ने वह सुन्दर समन्वय आत्मा और जीव का प्रस्तुत किया था जो पाश्चात्य जगत प्लेटो और बर्गसाँ जैसी शक्तिशाली चिन्तन शक्तियों के बावजूद आज तक नहीं कर सका। प्लेटो ने भी वेदान्तियों की तरह उस अजर-अमर शाश्वत आत्मा पर जोर दिया।

उनका मार्ग जीवन मे दार्शनिक मत्रों मे, सूक्ष्मताओ मे जाकर खो गया था। नीत्से ने पहली बार इस अैब्सट्रैक्शन, सूक्ष्मता प्रेम, का विरोध किया। यह विरोध बर्गसा के इलानवाइटल, जीवन प्रवाह, मे स्पष्ट रूप मे मुखरित हुआ और यूरोप के विद्वानो के मस्तिष्कों मे चट्टानो पर गिरते प्रपात की तरह खिलता चला गया। बर्गसा ने कहा प्लेटो तुम्हे जीवन मे सूक्ष्म निर्जीव तत्वो की ओर ले जाता है और उन्हे सत्य कहता है। मै तुम्हे उन सूक्ष्म, बेजान तत्वो मे जीवन की ओर आने का आव्हान करता हू। लाइबनीज ने भी अपने मोनेड्स का जो रूप बताया वह आत्मा नही जीव के निकट था।

आज पश्चिम अपनी क्लासिकी दुनिया मे अलग हो गया है। एक नामसझ विद्रोह ने पश्चिम की प्रतिभा को खा लिया है। जिस आत्मा को प्लेटो और अरस्टोटल सत्य कहते है उसके विरोध मे नीत्से, बर्गसा, फ्रायड, जुग द्वारा बनाई गई आत्मा खडी है जो वास्तव मे जीव है। क्लान्त थका हुआ, टूटा, हारा, वासनाओ मे जर्जर, इच्छाओं और विचारों मे घिरा हुआ आज का यूरोप इस जीव को यथार्थ ही नही सत्य मानकर इसकी अभिव्यक्ति मे जी जान मे लगा है। ऐक्सोंथिवस और आधुनिक युवा वर्ग का विद्रोह इसी परम्परा मे एक और चरण है।

यह हमारा सौभाग्य है कि हमारी दार्शनिक परम्परा मे महावीर ढाई हजार वर्ष पूर्व हो चुके है और उसी समय उन्होने इन दोनों विचारधाराओं का सगम बना दिया था जिसमे ये हमारी जाति मे कभी भी तलवारे लेकर एक दूसरे मे युद्ध न करे। जीव ही आत्मा है और आत्मा ही जीव है। इतनी सरलता मे हम इस बात को कह सकते है। जब तक मनोवैज्ञानिक आत्मा एक रूप मे सगठित नही हुई है और जब तक उसमे स्वय मिट जाने की आग नही जगी है तब तक वह जीव है। और जब समस्त इच्छाए, विचार, स्वप्न आदि एक सूत्र मे पिरोये जा चुके है और मनोवैज्ञानिक आत्मा दार्शनिक मृत्यु के लिये विव्हल होकर जल जाती है तो जीव की जगह आत्मा प्रगट हो जाती है। जीव

का दीप बुझता है तो आत्मा का सूर्य उदित हो जाता है। यही वह दार्शनिक मृत्यु है जिसका ज़िक्र महावीर ने निर्वाण शब्द के द्वारा किया।

महावीर के दर्शन की अनोखी बात है—अपूर्ण सत्य। महावीर स्वयं अजित हैं, दुर्जय आत्मा को जीत चुके हैं। वे केवली हैं। परन्तु दार्शनिक तल पर जो भी चर्चा उन्होंने अपने शिष्यों से की है वह परमार्थिक नहीं है, व्यवहारिक है। पूर्ण सत्य की चर्चा नहीं की जाती। वह अनुभव का विषय है। बात तो करनी है केवल मार्ग की। मार्ग पर चलने वाले को मंज़िल साफ नहीं दीखती। दूर गांव के बटोही को दूर का गांव यात्रा का पग रखते ही नहीं दीखता। पहले जामुन का पेड़ दीख रहा है, फिर पनघट। फिर वह मन्दिर आया जिसके बाईं ओर की पगडंडी पर उसे जाना है। कोई उसे सारे मोड़ एक साथ बता दे तो वह भ्रमित हो जायेगा। सही समझाने वाला उसे कुछ दूर तक का रास्ता समझायेगा और कहेगा कि बाकी आगे पूछ लेना। महावीर भी यही कह रहे हैं। उन्होंने चरम सत्य की ओर शिष्यों का ध्यान नहीं खींचा। उन्होंने अपूर्ण सत्य बताये। उस युग में उपनिषदों के चिन्तन के बाद साधारण लोग भी जिज्ञासा करने लगे थे—चलो जनक के दरबार में। वहां लोग बताते हैं वह प्रकाश कौन सा है जो सूर्य के भी पीछे दमक रहा है। ब्रह्म और आत्मा का निराकार रूप सर्वविदित हो चला था। उस युग में भी महावीर ने एक ऐसी बात कही जो बहुत से आधुनिक दार्शनिकों को बचकानी लगेगी। उन्होंने कहा कि जिस शरीर में आत्मा प्रवेश करती है उसी आकार की हो जाती है। यह सुनकर बहुत से तत्वज्ञ हंसे कि जो इस तरह घट-बढ़ रही है वह आत्मा नहीं है। महावीर सुकरात की तरह दार्शनिक विवाद नहीं कर रहे थे। उनका तरीका Dialectical नहीं था जो अधिकांश तत्वज्ञों का रहा। शंकराचार्य और नागार्जुन का तरीका भी Dialectical था। इस तरीके से उस सत्य की दिमाग़ी बहस हो सकती थी जो अन्ततः है। परन्तु

महावीर व्यवहारिक चिन्तक थे। उन्हें अपने समय में व्याप्त मानवीय मनस की उलझनों, दुविधाओं का ज्ञान था। वे मनुष्य को उन मानसिक द्वन्द्वों से मुक्त कर एकता में स्थित कर देना चाहते थे। इसी को उन्होंने ध्यान कहा। दिमाग़ को हठ द्वारा किसी केन्द्र पर लगा देने को उन्होंने ध्यान नही माना। जीवन में जो द्वन्द्व आज है वे एकत्व मे अपना समायोजन करते चलें—इसी को उन्होंने ध्यान कहा। महावीर ने जिस घटने बढ़ने वाली आत्मा का ज़िक्र किया वह मनोवैज्ञानिक आत्मा है। जिसे फ्रायड ने साइक्लोजिकल सेल्फ कहा। यह दुर्जेय और ज़िद्दी है। यह खरबूजे की तरह खरबूजों को देखकर रंग पलट देती है। महावीर ने कहा विनय, सदाचार, व्यवहारिक चिन्तन से इस सहस्रमुखी मानसिक आत्मा को एकाग्र कर लो। इसे अनेक स्थलों पर मर जाने दो ताकि भीतर मन्दरम् के बीच इसका पुनर्जन्म हो। जब ऐसा होगा तो यह आत्मा एक वायुविहिन स्थान पर निर्विघ्न जलती लौ की तरह हो जायेगी। इस आत्मा के संयमित, एकाग्र हो जाने पर आगे का मार्ग उसे आप दीख जायेगा। मानसिक यात्रा मे बहुत मोड़ है। व्यास ने इस पथ को गहराई में जाने वाली मछलियों के मार्ग की तरह बताया है जिसे ट्रेस नहीं किया जा सकता। कहीं अचानक मोड़ हैं, कहीं अचानक मूल्य विपरीत हो जाते हैं। यह निरन्तर उर्ध्वता नही है। इसलिये महावीर ने पहले से वह आगे का मार्ग नहीं बनाया केवल उतना बताया जितना बिना उलझाये बताया जा सकता था और बाकी व्यक्ति पर छोड़ दिया। वह जब मार्ग पर लग जायेगा तो स्वयं उसी मे वह दीप जल जायेगा जो आगे का मार्ग दिखायेगा। अभी तो जरूरी है कि वह प्रारम्भिक दीप जल जाये। लोग आत्मा के उस विकृत रूप को अपने भीतर पकड़ सकें जो वह हो गई है और उसे शुद्ध करने का यत्न शुरू कर दें।

महावीर ने इस आत्मा को अत्यन्त दुर्जेय भी कहा है—"दुज्जयं चैव अप्पाणं। सव्वमप्पे जिए जियं"—एक आत्मा को जीत लेने पर सब कुछ जीता जा सकता है। उन्होंने आत्मा को नित्य, शुद्ध, बुद्ध, मुक्त

स्वभाव नहीं कहा। यह दुर्जेय है। इन्द्रियों के द्वारा विषयों में प्रवृत्त है। इसे जीतना है। आज की दुनियाँ जान गई है कि अमर, शाश्वत, शुद्ध, बुद्ध आत्मा की बात करना निरर्थक है। इस परम पुनीत आत्मा का जिक्र तत्वज्ञ हजारों वर्षों से करते आ रहे हैं। परन्तु मनुष्य स्वभाव दिन पर दिन कुटिल और दुरूह होता जा रहा है। फिर इस दार्शनिक विवेचन से उपलब्धि क्या हुई? महावीर और बुद्ध ने इस व्यर्थता को जान लिया था। पूर्ण सत्य की बात करना अपूर्ण जीवन में जीवन को प्रमादी बना देता है। वह पूर्ण सत्य उपलब्धि से परे है यह जानते ही हम हाथ-पाव मारना भी बन्द कर देंगे। हम सब डायगनीज़ बन जायेंगे और टब में पड़े रहेंगे या चरस और मादक वस्तुओं द्वारा चेतना का विस्तार करने की तरकीबें ढूंढते रहेंगे ताकि इस कैनवेस पर वह विराट् झलकता रहे। महावीर ने अपूर्ण सत्यों की बात कही। अनेकान्तवाद बताया। फिर भी कहा कि अपने मार्ग पर दृढ़ रहो क्योंकि अपूर्ण सत्य ही तुम्हें मिल सकता है। उसे ही लेकर तुम्हारी आत्मा व्यवहारिक पथ पर चले। उसी अपूर्ण सत्य को विकसित और एकाग्र करती चले। पूर्ण सत्य को न वह समझेगी न पाने की चेष्टा करेगी Inferiority महसूस कर प्रमादी जरूर हो जायगी।

हजारों वर्षों के मनुष्य जीवन ने उपलब्धि क्या की? आज भी हम में मनुष्यों का शोषण करने, मनुष्यों पर शासन करने की अमानवीय वृत्तिया क्यों है? प्रजातन्त्र का युग आ गया—एक ऐसा विलक्षण युग जब सैनिक क्रान्ति के बाद सैनिक शासक शासन न करके प्रजातन्त्र की स्थापना कर रहे है। एक ऐसी अनहोनी बात जिसे प्राचीनकाल के लोग सुनकर चकित हों और हमारे युग की प्रशंसा करते न थकें। एक ऐसे युग में भी मनुष्य क्यों मनुष्य का शोषण उसी तन्मयता से कर रहा है जिस तन्मयता से प्राचीनकाल में करता था? आज भी मनुष्यों की नीलामी क्यों की जाती है? एक फर्म में काम करने वाली प्राइवेट सैक्रेट्री को क्यों मालिक मन ही मन अपनी दासी से अधिक कुछ नही

समझता ? एक बड़ा अधिकारी छोटे को क्यों दास से अधिक नहीं समझता जिसे ज़ुबान खोलने के लिये भी उसकी इजाजत चाहिये। फर्क सिर्फ इतना है कि वह बात जो पुराने जमाने में दमन कही जाती थी आज अनुशासन है। एक बड़ा समृद्ध देश क्यों आज भी नहीं शर्माता छोटे देशों की नीलामी करता हुआ, उनकी आत्मा खरीदता हुआ? इसका कारण यही है कि जिस मानवीय आत्मा को हम पवित्र, नित्य, शुद्ध, बुद्ध, मुक्त समझते रहे और कहते रहे कि वह पतित नहीं होती, वह व्यवहार में पतित हो जाती है। जो समाज इस व्यावहारिक दुखद सत्य को लेकर नहीं चलेगा वह मनुष्य के लिये भविष्य की रचना नहीं कर सकेगा। महावीर ने यथार्थ को नेत्रों में धरा है। उस वीर जिन पुरुष ने समस्त कटु यथार्थों से हाथ मिलाया है। नीत्शे की तरह महावीर कहता है—मैंने हाथ मिलाया है बन्धुओ शीत ऋतु से और उस सर्द से मेरे हाथ नीले हुए हैं। महावीर का दर्शन मनुष्य से कहता है व्यावहारिक बनो। जो सत्य व्यवहार की स्थूलता में महसूस नहीं किया जा सकता वह सत्य नहीं है।

महावीर की यही श्रेष्ठता है कि वे सुन्दर, मोहक, बौद्धिक वातावरण रचकर धूप और पवित्र सुगन्धों से सुवासित की गई, हाथी दांत की बनी आध्यात्मिक मीनार में नहीं रहते न किसी योग के द्वारा उस आध्यात्मिक भ्रम को स्थाई करते हैं। वे धरती पर चलते हैं। तब भी जब रत्नजटित इन्द्रों के मुकुट उनके सम्मान में झुकते थे, जब चक्रवर्ती सम्राट कतार बांध कर अपना पौरुष उनके चरणों में अर्पित कर रहे थे, तब भी देख सकते थे हम निर्ग्रन्थ नाथ पुत्र को द्वार-द्वार जाते, नत नयन, विनीत, कि एक ग्रास भिक्षा का कोई उनकी अंजली में दे दे। वह वीर पुरुष मनुष्य की व्यथा से कैसे अछूता रहता। इसी व्यथा ने उसे तप के लिये उद्वेलित किया। तप से जब वह लौटा तो फिर उसी त्रस्त मानव समूह के बीच विचरा। उन्हीं की भाषा ली। उन्हीं की समस्याएं। उन्हें अन्तिम सत्यों पर प्रवचन नहीं दिया। उनकी व्याधियें पकड़ीं और उन्हें बताया

कैसे सच्चे मनुष्य बनो। जब उतना बन जाओगे, जब यह दुर्जेय आत्मा जीत लोगे तो अमर जीवन का विहान होगा। एक और ही दीप जलेगा हृदय में। शायद यह वह आत्मा होगी जिसका वेदान्तियों ने जिक्र किया। पर आज ही उसका जिक्र कर देना उसे हमेशा के लिये खो देना है। दार्शनिक "मैकटेगर्ट" का कहना था कि आत्मा एक जीत है जिसको हरदम उद्यम के साथ हमें सत्य आचरण द्वारा जीते रखना है अन्यथा वह उड़ जायेगी। जैसे चारा डालकर चिड़ियों को फसाया जाता है इसी तरह जब मानसिक आत्मा सत्कर्म करती है, द्वन्द्वों को लीन कर एकत्व प्राप्त कर लेती है तो वह स्वयं वह चारा डालना सीख जाती है जिस पर सनातन मुक्त आत्मा जाकर बैठ सके।

महावीर ने "साइक्लोजिकल सेल्फ" को आत्मा कहा और उसे मोल्ड (Mould) करने के लिये कहा। उसकी प्रवृत्ति है एक में अनेकों में फैलने की—एकोहं बहुस्याम्। चूंकि वह दिव्यों से जन्मी है, अतः यह दिव्यों की आदत हमारे शरीर में ले आई है। महावीर कहते हैं कि पृथ्वी पर उसका पृथ्वीकरण करो। यहां बड़े-बड़े अवतार आकर भी मृत्युलोक का धर्म निभाते हैं। यहां वे अपना विष्णुत्व प्रकट नहीं करते। साधारण पुरुषों के बीच संघर्ष करके महान बनते हैं। इसी तरह इस साइकलोजिकल सेल्फ को स्वर्ग की आदत छोड़नी होगी और पार्थिव होना होगा। इसे फिर अपने खेल समेटना सिखाओ। यह ईश्वर की नकल न करे। एक से अनेक न बने। जैसे बच्चे मम्मी और डैडी बनकर छोटे-छोटे गुड़ियों के खेल करते हैं ऐसे ही खेल यह साइक्लोजिकल सेल्फ करती है। इसी कारण एक से अनेक हो जाती है। पर ये खेल खेलने की भी एक उम्र होती है। न जाने कितने जन्मों से आत्मा यही खेल खेल रही है। यही चौरासी लाख योनियों में इसका भ्रमण है। अब यह मनुष्य योनि में है अब तुम्हारी बात समझ सकती है। अब उसे समझना है कि उसे ये खेल छोड़ने हैं। ईश्वर की, पिता की नकल करता रहा तो बच्चा सीखेगा क्या? पृथ्वी पर आने के बाद इस आत्मा को समझना है कि यहां विकास का सिद्धांत विपरीत

(reverse) है। महावीर उसी साइक्लोजिकल सेल्फ से कहते हैं कि जो यह तुम्हारी एक से अनेक में unfolding हुई है इसे वापिस ले जाओ। यह चौरासी लाख योनियों का विस्तार लौटाओ। एक साइक्लोजिकल सेल्फ ही इन चौरासी लाख अनेकों मे बदल गया है। उन अनेकों का लय फिर एक में कर दो। यही भव चक्र मे मुक्ति है। इसके उपरान्त ही तुम उस अजर-अमर आत्मा की बात समझ सकते हो। जब तक इन अनेकों का विलय नही करोगे तुम्हें उस अजर-अमर आत्मा का अनुभव नही हो सकता। जब तक उसका अनुभव ही नही होगा तब तक हम उसे गलत समझते रहेंगे। साइक्लोजिकल सेल्फ ही वह रूप धर लेगी जो तुम आत्मा को attribute करोगे क्योंकि उसे अभिनय का शौक है। जब यह अनेक से फिर एक बन जायगी तब तुम समझ सकोगे कि इसकी दार्शनिक मृत्यु क्या है ? इस दीप को बझाना होगा। पाश्चात्य विद्वानों को बड़ी परेशानी हुई थी यह जानकर कि जैन और बौद्ध निर्वाण को सर्वश्रेष्ठ पद मानते हैं जो है मर जाना, दीप का बझ जाना। उनका ख्याल था कि दीप बुझ गया तो शून्य रह गया। अतः उन्होंने कहा कि महावीर का निर्वाण शून्य है। परन्तु आज के विज्ञान ने भी बता दिया कि जो चीज़ है वह है, वह कभी नष्ट नहीं होती, केवल रूपान्तरित होती है। जो नही है केवल वह नष्ट होती है। ज्योति कभी नष्ट नही होती। साइक्लोजिकल सेल्फ के रूप मे ज्योति बझेगी तो उसका पुनर्जन्म होगा एक उच्च शिखर पर, सिद्ध शिला पर। वही ज्योति तब वह आत्मा बनकर जलेगी जो न घटती है न बढ़ती है, जो शुद्ध, बुद्ध, मुक्त है।

महावीर ने आत्मा के सम्बन्ध में पूरी बात नहीं कही क्योंकि कहना व्यर्थ था। वे तीर्थंकर थे। उन्होंने उतना ही कहा जितना एक तीर्थंकर या पुल बनाने वाले के लिये बताना उचित है। उसके आगे तो स्वयं खोजने की बात है। उन्होंने बस यही कहा कि आत्मा दुर्जेय है। एक आत्मा को जीत लेने मे सब जीत लेते है हम। इस तरह साइक्लोजिकल सेल्फ की बात करके उन्होंने हमें एक राह पर लगा दिया। जरूरी इशारे

बना दिये। निर्वाण उद्देश्य बना दिया। यह आत्मा मृत्यु से न डरे। यह मर जाय। तभी तो परम सत्य एक और परिष्कृत तल पर हममें प्रकट होगा। हर व्यक्ति में आत्मा है। पत्थर, लकड़ी आदि में भी यह आत्मा बसी है, उन्होंने कहा, और मनुष्य में भी। परन्तु यह स्थूल (gross) आत्मा है। जब तक यह नहीं मरेगी तब तक सूक्ष्म, शुद्ध, बुद्ध आत्मा का अनुभव नहीं हो सकता। इसी कारण मनुष्यों में उस आत्मा का ज़िक्र उन्होंने नहीं किया। उन्होंने साइकलोजिकल सेल्फ की बात की जो उपलब्ध है। वही साइकलोजिकल सेल्फ आज भी उपलब्ध है। आज भी वह चौरासी लाख योनियों में भटक रहा है। एक से अनेक बना जा रहा है। जब तक यह नहीं रुकता, जब तक हम इस सनातन आत्मा को व्यवहारिक राह नहीं बना सकते, योग, ध्यान आदि द्वारा इसके सताप हरने की बात कहना ऐसी ही मूर्खता है जैसे उम्मीद करे कि सो गया अनाथ बच्चा तो मा से हुए विछोह को भूल जायगा। नहीं वह भूला रहेगा केवल जब तक सो रहा है। मनुष्य की आत्मा आज भी अपने प्राचीन खेल में व्यस्त है और जीवन व्यर्थ हो रहा है। महावीर कहते हैं कि इस prodigal son को सम्भालो। यह आत्मा जो भटक रही है इसकी यात्रा उल्टी कराओ ताकि यह अपना क्षय करे और मृत्यु की ओर बढ़े जीवन की ओर नहीं। जब यह मृत्यु को प्राप्त करेगी तो इसकी जगह शून्य नहीं आयेगा। इसकी जगह जो आयेगा उसका वर्णन करना शब्दों का व्यर्थ प्रयोग है।

यही बात बुद्ध के अनात्मवाद को भी प्रकट करती है। आत्मा अमर नहीं है और वह निरन्तर बदल रही है। हम दो बार उसी नदी में प्रवेश नहीं करते। वे भी उसी साइकलोजिकल सेल्फ का जिक्र कर रहे हैं जिसका ज़िक्र करते हुए उस युग के प्रमादी तत्वज्ञ शर्माते थे। उपनिषदों में कथित आत्मा का दिमाग़ी सुख लूट-लूट कर वे लोग आध्यात्मिक विलास में पल रहे थे। अतः, उन्होने भी आध्यात्मिक आत्मा का हौव्वा खड़ा कर रखा था—जो न बदलती है, न घटती है, शाश्वत है, शुद्ध,

बुद्ध हैं। उनके प्रमाद और प्रपंच से बचाने के लिये यह जरूरी था कि महावीर और बुद्ध उन्हें यथार्थ की ओर खींचते। उन्हें दर्शन कराते उस यथार्थ आत्मा के जो उनके भीतर थी जिसे छोड़कर वे मन से बेखबर आध्यात्मिक विलास में डूबे हुए थे। अतः, उन्होंने कहा कि आत्मा की नित्यता की बात गलत है। यह तो हर क्षण बदल रही है। महावीर ने कहा कि इसे निराकार या निर्गुण कहना गलत है। यह तो वही आकार रखती है जिस शरीर में यह है। उनका उद्देश्य था कि मनुष्य को शून्य में ध्यान लगाने की आदत से बचायें। वह आत्मा को एक abstraction समझ रहा था जो उसमें है और जो उसके किसी भी बरे काम से मैली नहीं होती। महावीर ने कहा कि वह मैली होती है। इस तरह दर्शन को उन्होंने पंख लगाकर उड़ने से रोका। उसे पृथ्वी पर चलना सिखाया।

समय आया है जब अनुभवों के बाद मानव समाज ने यह पहचानना शुरू किया है कि महावीर ने जो बातें परम पुनीत सत्यों से हट कर कही थीं वे कहनी बहुत जरूरी थीं। उन्होंने दर्शन को पृथ्वी पर चलना सिखाया। वे पहले विचारक हैं जिन्होंने परिपूर्ण सत्यों को छोड़कर अपूर्ण सत्यों की सार्थकता बताई। परिपूर्ण सत्य कल्पित हो चले हैं आज के युग में। आज भी वही स्थिति है जो उनके सामने थी। आज भी मनुष्य को पूर्ण सत्यवादियों ने बहका रखा है। विश्वास के आवरण में उसके यथार्थ को नग्न किया जा रहा है। ऐसा ही विश्वासघात ईसा से छः सौ शताब्दि पूर्व भी हुआ था।

सुत्तेसु यावी पडिबुद्ध जीवी,
न वीससे पंडिए आसुपन्ने

(आशुप्रज्ञ पंडित पुरुष को मोह निद्रा में सोये हुए संसारी मनुष्यों के बीच रहकर भी सब तरह से जागरूक रहना चाहिए और किसी का विश्वास नहीं करना चाहिए)

व्यक्तित्व का विघटन—Loss of Individuality :

आधुनिक मनुष्य की सबसे बड़ी समस्या है उसका व्यक्तिगत विघटन। उसके भीतर एक ऐसा सहस्रमुखी द्वन्द्व शुरू हो गया है जिससे उसकी समस्त मानसिक शक्तिएँ पारस्परिक विरोध में टूट रही हैं। यह कहना गलत है कि मनुष्य समाज के मूल्य गिर रहे हैं। उसके नैतिक मूल्य आज भी वे ही हैं। उसकी कठिनाई यह है कि आज वे मूल्य उसे असंभव प्रतीत होते हैं। उसे अपना व्यक्तित्व एक बंधी निर्दिष्ट दिशा की ओर जाती हुई जलधारा की बजाय बिखरे पानी जैसा लगता है जो कोई भी अन्य दिशा ग्रहण करने को तैयार नहीं है। इससे उसे मूल्यों के प्रति सन्देह हो गया है। त्याग और बलिदान का जोश उन मूल्यों में नहीं है क्योंकि इसमें उसे आत्महिंसा की उपलब्धि होती है। उसे लगता है कि वह निष्प्रयोजन अपनी हत्या कर रहा है। इस तरह उसका व्यक्तित्व दो दिशाओं में टूट गया है। नैतिक मूल्य आज भी वैसे ही हैं परन्तु जो शक्ति उन्हें व्यवहारिक जीवन में प्रगट करती वह सन्देह से भर गई है। बातें वह आज भी आदर्श की करता है परन्तु उन पर चलने की लेशमात्र भी प्रेरणा नहीं रही है। उसकी कर्मशक्ति आज उसकी विचारशक्ति के साथ नहीं है। आज के युग की सबसे बड़ी विडम्बना यही है। यह कहना गलत है कि मनुष्य के नैतिक मूल्यों का ह्रास हुआ है। सच्चाई, ईमानदारी, परोपकार, दया, क्षमा, हिंसा को आज भी वह सर्वोपरि मानवीय गुण मानता है परन्तु उसकी कर्मशक्ति उनको व्यक्त करने की चेष्टा नहीं करती। कर्मशक्ति हताश हो चुकी है। ऐसी परिस्थिति में "कर्मण्येवाधिकारस्ते" वाला सिद्धांत आज उसे

प्रेरणा नही देता। शायद उस युग मे मनुष्य की कर्मशक्ति उसके विचारों के अनुकूल थी और उसे समझाया गया था कि उसके विचार फल से आक्रान्त न हों परन्तु आज उसकी कर्मशक्ति थक गई है। हजारों वर्षो से आदर्शो के लिये लडते-लडते और अपने को व्यर्थ जाते देखकर आज मनुष्य शक्ति ने घुटने टेक दिये है। प्रश्न यह है कि क्या महावीर की वाणी मे सामर्थ्य है कि वह इस कर्मशक्ति को प्रेरित कर सके? आज वे ही विचार मनुष्य का कल्याण कर सकते है जो सीधे हमारे विचारों से नही हमारी कर्मशक्ति मे टकराये और उसे उद्वेलित करे। आज प्रजातंत्र के युग मे लगभग समस्त सभ्य समाज ने महावीर के विचारों को अपना लिया है। मनुष्य की समानता, बन्धुत्व, मैत्री, परोपकार, क्षमा आदि संयुक्त राष्ट्र संघ के सिद्धात बन चुके है। परन्तु फिर भी आज के मनुष्य की कर्मशक्ति उसे विपरीत दिशा की ओर ले जा रही है। वह चालाकी, शोषण, परिग्रह, हिंसा, लिप्सा, जघन्य-अपराध की ओर बढ रहा है। यह एक विचित्र विडम्बना है कि ज्यो-ज्यो सभ्य जगत ने इन आदर्शो को राष्ट्रीय एव अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर अपनाया त्यो-त्यों मनुष्य का सत्कर्मो को करने का स्वाभाविक जोश खत्म होता गया। सम्भवत: महावीर के विचारो को विगत सैकडो वर्षो मे उस प्रकाश मे न रखा गया हो जिसमे वे कर्मशक्ति को दिखाई देते और वह उनसे प्रेरित होती। कोई न कोई भूल मनुष्य ने अवश्य की है कि इतनी बडी वैचारिक सम्पत्ति होते हुए भी वह इस से लाभ न उठा सका। सम्भवत: एक विशेष बात की ओर हमारा ध्यान गत शताब्दियो मे नहीं गया कि महावीर ने दार्शनिक वाद-विवादो मे अपने शिष्यो को उत्साहित नही किया। उन्होंने सम्यक् चरित्र को अधिक महत्व दिया और विचार से पहले आचार को प्राथमिकता दी। उन्होने मनुष्य से अपेक्षा की कि वह अपनी कर्मशक्ति को अनुशासित करे और दार्शनिक विचारों मे न पडे। उन्होंने मनुष्य को वे ही सरल विचार दिये जिससे उनकी कर्मशक्ति बिना उलझे सम्यक् चरित्र के पथ पर बढ सके। मनुष्य के

व्यक्तित्व के विघटन का एकमात्र कारण यही है कि मनुष्य के विचारों की उपयोगिता कर्मशक्ति के लिये लगभग शून्य रह गयी है । ये दोनों अलग-अलग हो गये हैं । इसलिये विचार भी विलास के साधन बन गये है । बड़ी-बड़ी एसेम्बलियों मे मनुष्यता, समानता, मैत्री और प्रेम-बन्धुत्व की बात करना दिमागी विलासिता हो गई है क्योंकि वे ही महान देशों के प्रतिनिधि दूसरे देशों की सहायता करते हैं तो प्रत्युत्तर मे मानसिक गुलामी चाहते है । उन्हे खाने को टुकड़ा देते है तो उनकी आत्मा खरीदना चाहते है ।

आवश्यकता है कि हम महावीर के विचारों को कर्मशक्ति के निकट लाये । आज हमारी कर्मशक्ति को पतित कर दिया है अनेकों भ्रमित करनी शक्तियों ने । वर्षो तक कठिन तप करके महावीर ने इन्ही दुराग्रही शक्तियों पर विजय प्राप्त की थी । जीवन की कोमल शक्ति को उन्होंने अक्षण्ण किया और समस्त दुष्ट शक्तियों को ललकारा कि अगर किसी मे साहस है तो वह इस ललना को छू दे । यह शास्त्रसिद्ध है कि जिस स्थान पर उसके चरण होते थे उस स्थान से सौ सौ योजन दूर तक दुष्ट शक्तिया भाग जाती थी । इस प्रकार महावीर साधारण मनुष्यों के लिये शात स्थिति का निर्माण करते थे जिससे वह निर्विघ्न अपने चरित्र का निर्माण कर सके । आज यह सम्भव नहीं है क्योंकि बचपन मे ही ये दुष्ट शक्तिया उसको अनेको बहकाने पथों पर खींच ले जाती है और वहा कोई महावीर उसे मार्ग दिखाने नहीं आता । स्कूल मे जो ज्ञानी मिलते है वे समझते है कि विचारों और आदर्शों की मदिरा पिलाकर उसे दलदल से निकाल सकते है । यदि यह सम्भव होता तो महावीर को बोलने मे इतनी विरक्ति न होती । ज्ञान के बाद भगवान महावीर ने मनुष्य को उपदेश देने से इन्कार कर दिया था। तब इन्द्रादि की अनेक स्तुतियों के पश्चात् उन्होने उपदेश दिया । यह भी शास्त्रों मे लिखा है कि जो पशु थे वह अपनी भाषा मे और मनुष्य अपनी भाषा मे महावीर की वाणी को समझते थे। इसका अर्थ यह नहीं कि वह

किसी लिग्वाफोन पर बोल रहे थे। मनुष्य के भीतर ही अनेक पशु, प्रेत, राक्षसी शक्तियां हैं जो उसकी मानवीय शक्ति को दबाती हैं। भगवान महावीर विचारों के तल पर उपदेश नहीं दे रहे थे बल्कि उन्होंने वह विलक्षणता प्राप्त कर ली थी जहां उनके शब्द सीधे कर्म शक्तियों से वार्तालाप कर रहे थे और उन्हें सही दिशा की ओर प्रेरित कर सकते थे। यही महावीर के विचारों का सार है क्योंकि उन्होंने यही उपदेश दिया कि विचारों के परिष्कार में ही लग जाने से मनुष्य का जीवन बेकार हो जाता है। उसे सम्यक्-चरित्र उपजाना है और चरित्र शक्तियों का सम्यक् संगठन है। विचारों को इस रूप में सरल और स्पष्ट करना आवश्यक है कि वे सीधे कर्म शक्तियों को संगठित और सुव्यवस्थित कर सकें।

फ्रायड के मनोवैज्ञानिक विश्लेषण के उपरान्त प्रथम बार व्यापक रूप से मनुष्य जाति के सामने एक विषम समस्या खड़ी हुई—मनुष्य ने जाना कि उसके विचार चाहे कितने भी शुद्ध और पवित्र हों उसके मन के कुछ कोने हैं जहां उसके बिना जाने छोटी-२ बातें, घटनायें और इच्छाएं छपकर, घुटकर, भयानक, परोक्ष, शक्तियों में बदल जाती हैं। ये कभी तो उसे दुष्कर्मों के लिये प्रत्यक्ष रूप से प्रेरित करती है और कभी उसमें अनेक तरह की पीड़ाओं और रोगों में बदल जाती है। उसे स्वयं मालूम नहीं होता कि वह इतना विघटित, परेशान, अनिश्चित, संदिग्ध और दूसरों के लिये एक समस्या क्यों बना हुआ है। इससे भी अधिक भयानक बात जो मनुष्य ने जानी वह यह थी कि मनुष्य के कर्म उसके विचारों पर निर्भर नहीं करते बल्कि इस मानसिक शक्ति पर निर्भर करते हैं जो अधिकांशतः विघटित, दुराग्रही और दुष्ट प्रवृत्तियों से भरी है। इस आविष्कार ने मनुष्य से बहुत कुछ छीन लिया। फ्रायड की इस खोज के बाद साहित्य में से आदर्शवाद मिटना शुरू हो गया था। धीरे-धीरे वह आदर्शवाद व्यवहारिक जीवन से भी मिट गया। आज के प्रगतिशील विचारक जैसे सार्त्र, कैमस आदि अस्तित्ववादी यह स्पष्ट

कहते है कि जब मनुष्य की आंतरिक प्रवृत्तियें दुष्ट है तो आदर्शवादिता और उच्च विचारों का एक चन्दोआ बनाना अपने को धोखा देना है। फलस्वरूप जिस तरह की कूटनीति के लिये कुछ वर्षो पहले कूटनीतिज्ञ भी शर्मिन्दगी महसूस करते उस तरह की कूटनीति आज साधारण व्यक्ति भी बरत रहे हैं लेकिन उसके लिये शर्मिन्दा नही है। मनुष्य के आदर्शों और उसकी कर्मशक्ति के बीच एक जबरदस्त अपरिचय और दुराव आ गया है। सभी उच्च आदर्शो या सात्विक विचारों या मानवीय मूल्यों को मनुष्य अव्यवहारिक तथा व्यक्तिगत आदर्शवादिता समझने लगा है। इस तरह सम्पूर्ण मनुष्य जाति स्वार्थपरता, आर्थिक शोषण, लोलुपता, कमजोरों का शोषण, दासता आदि अमानवीय प्रथाओं को पुनः नये रूप मे ग्रहण करती जा रही है। आज भी आदर्शवादिता की कमी नही है। आज भी शुद्ध विचारों की कमी नही है और आज भी हजारों लोग उच्च मानवीय मूल्यों का उद्घोष करते हुए नही थक रहे हैं। यदि हम महावीर को भी एक ऐसा ही मानवीय मूल्यों का उद्घोषक समझें तो निश्चय ही उनके द्वारा भी इस जगत का हित नही हो सकता। इन अनेकों उद्घोषकों के बीच उनकी भी उद्घोषणा खो जाएगी क्योंकि समस्या है दूरी की। मनुष्य की कर्म शक्तियों और बौद्धिक शक्ति के बीच की दूरी की। अतः यह समझ लेना जरूरी है कि महावीर इन आदर्शवादी चिन्तकों, नीतिज्ञों और महापुरुषों से अलग है। यह बात जैनशास्त्र कहते है कि भगवान महावीर को पूर्ण ज्ञान पिछले ही जन्म मे हो चुका था परन्तु फिर भी उन्हे वर्द्धमान वाला यह अन्तिम जन्म लेना पडा। इसका कारण था कि पूर्व जन्मों का ज्ञान बौद्धिक था, उसी ज्ञान को व्यवहारिक या फ्रायड की भाषा मे मानसिक शक्तियों के तल पर भी स्वतन्त्र रूप से अर्जित करना आवश्यक था। भगवान बुद्ध ने अपने शिष्यों से कहा था कि केवल बौद्धिक स्वतंत्रता ही पर्याप्त नही है शिष्यों—एक और स्वतंत्रता है, वह है हृदय की स्वतंत्रता जिसके बिना बौद्धिक स्वतत्रता या आदर्शवाद व्यर्थ हो जाता

है। इसी तरह भगवान महावीर कहते हैं कि केवल बुद्धि का परिष्कृत हो जाना, उसमें उदात्त मानवीय आदर्शों व मूल्यों की स्थापना कर लेना पर्याप्त नही है। जब तक जीवन शक्ति स्वयं अपनी कर्म प्रेरणा मे, स्वतः, बिना उन आदर्शों के आवरण के, उन्ही उच्च मानवीय मूल्यो को व्यक्त नही करती तब तक मनुष्य जीवन मुक्त नही रह सकता अपने को। फ्रायड ने रास्ता सुझाया था कि उन दबी हुई इच्छाओं, वासनाओं और विचारों का बहिर्गमन मनुष्य को मानसिक दुष्टता से मुक्त कर सकता है। परन्तु अनुभव ने और बाद के मनोवैज्ञानिको ने बताया कि ऐसा नही है। बहिर्गमन या उन्हे व्यक्त कर देना कुछ समय के लिये उनसे मुक्ति दिला सकता है परन्तु पुनः वह प्रगट होंगे क्योंकि मानसिक शक्तियों का एक कुत्सित संगठन भीतर बन चुका है और वह जीवन प्रवाह मे फिर वे ही इच्छाएं और दुष्प्रवृत्तियें बना लेगा। यह क्रम अन्तहीन होगा। केवल अभिव्यक्ति से मनुष्य का मनस रंजन नहीं हो सकता। भगवान महावीर ने यह बात हजारों वर्ष पूर्व व्यक्त की थी।

आज के मनुष्य की निराशा के दो प्रमुख कारण है एक ओर तो मनोवैज्ञानिकों का कहना और मनुष्य का स्वय का अनुभव कि दुष्ट कामना, दुष्ट प्रवृत्तियों को अभिव्यक्त करके भी वह उनसे मुक्त नही हो सकता। वे दुष्प्रवृत्तिए मात्र दमन के कारण नहीं है अन्यथा अभिव्यक्ति मिलने पर यह अधेरा मनुष्य के क्षितिज से दूर हो जाता। दूसरी निराशा आज के मनुष्य को विकासवादियों से मिली है जिनकी शृखला डार्विन से शुरू हुई। डार्विन ने बताया कि मनुष्य जीवन अन्य प्राणियों के जीवन की तरह एक दूसरे के शोषण और संघर्ष पर आश्रित है और मनुष्य पर भी "सर्वाइवल आफ दी फिटेस्ट" का सिद्धात लागू होता है। मनुष्य मे जो जीवन शक्ति है वह उतनी ही स्वार्थी, लोलुप और हिसात्मक है जितनी अन्य प्राणियों मे है। हेनरीबर्गसाँ ने समस्त प्राणियों के जीवन को एक सतत् प्रवाह कहा है जो निरकुश गति मे दौड रहा है उल्लासमय, जिसे इसकी चिन्ता नहीं है कि कौन

पिछड़ गया, कौन कुचल गया। यह प्रवाह किस ओर जा रहा है इसका ध्यान भी इसे नहीं है। कुछ वर्ष इसके चमत्कारी फेनिल उल्लास में रहने के पश्चात हेनरीबर्गसां भी इससे घबरा गया।

महावीर का कहना इन दोनों से अलग है और मनुष्य के लिये उनकी वाणी में वे आशा के दीप हैं जो विकासवादियों और मनोवैज्ञानिकों ने बुझा दिये। भगवान महावीर इस बात से इन्कार नहीं करते कि मनुष्यों में लोलुपता, हिंसा, स्वार्थपरता है। वे इससे भी इन्कार नहीं करते कि मनुष्य जीवन पशुओं की तरह एक अनिर्दिष्ट दिशा की ओर बढ़ रहा है। परन्तु वह यह कहते हैं कि ऐसा इसलिये है कि वह अपने बौद्धिक ज्ञान का व्यवहारीकरण नहीं कर सका। यह व्यवहारीकरण ही तप है। तप के अर्थ हैं कि नैतिक और उच्च मानवीय मूल्य जो हमारी बुद्धि ने अर्जित किये अब हमसे शब्द या विचार बनकर प्रगट न हों बल्कि हमारे मूलाधार से छोटी बड़ी कर्म प्रेरणाएं बनकर प्रगट हों जो बिल्कुल नपी-तुली हों और उन्हीं आदर्शों को हमारी छोटी से छोटी भाव-भंगिमा भी प्रगट कर सके। यह जीवन प्रवाह जो हममें अनिर्दिष्ट स्वार्थमय और हिंसा से भरा है यह स्वयं संगठित हो, बिना विचारों के, केवल शक्तियों के रूप में और वह संगठन सर्वथा मानवीय और उदात्त हो। भगवान महावीर का कहना है कि एक उच्च जीवन की प्राप्ति तब तक नहीं हो सकती जब तक उच्च आदर्श और विचार हमारी कर्मशक्ति का दमन कर रहे हैं और उसे आदर्श मार्ग की ओर मोड़ रहे हैं। उनका कहना है कि उच्च जीवन के अर्थ यह हैं कि मनुष्य की जीवन शक्ति अपनी हिंसात्मक, स्वार्थमय प्रवृत्ति छोड़ दे। बिना विचारों के सहयोग के, बिना चेतना के मार्ग निर्देशन के, वह सोते हुए भी स्वयं ऐसी अभिव्यक्ति दे जो सर्वथा आदर्श और मानवीय हो। उन्होंने कहा है कि यह सभव है कि कर्मशक्तियों के इस प्रवाह को साधा जा सके।

बौद्धिक शक्ति और कर्मशक्ति

भगवान महावीर आज के युग में क्लान्त और उद्भ्रान्त मानव को पथ दिखा सकते हैं। कारण यह है कि उनके विचार इस जीवनशक्ति का दमन करने को नही कहते। वे कहते है कि यह संभव है कि यह जीवनशक्ति स्वतंत्र रूप से एक और धारा का निर्माण करे जो बौद्धिक धारा की तरह परिष्कृत और उसके समानान्तर हो। जो बुद्धिजीवी और नैतिकतावादी और आदर्शवादी है उनके लिये उनका संदेश है कि तुम आधे मार्ग में रुक गये हो। उनसे उनका कहना है कि अपनी निराशा और क्षोभ के कारण तुम स्वयं हो। तुम्हें इस बात का दुःख है कि तुम जानते हो कि सत्य क्या है और मनुष्य के कल्याण के लिये सही मार्ग कौनसा है परन्तु फिर भी लोग तुम्हारी बात नहीं मान रहे हैं। तुम भूल कर रहे हो। वे तुम्हारी बात कभी नहीं मानेंगे क्योंकि जो बात करने की है वह तुम कह रहे हो। तुम्हें सत्य और नैतिकता कहनी नही है करनी है। केवल इस रूप में तुम उसे सूक्ष्म तल से मनुष्य की व्यवहारिक दुनिया में उतार सकते हो। यदि तुम यह समझ लो कि बुद्धि को परिष्कृत कर लेने के पश्चात् अब तुम्हारा काम है जीवनशक्ति को भी परिष्कृत करना तो तुम जानोगे कि तपस्या का समय तो अब आया है। जिस तरह तर्क और निःस्वार्थ निष्पक्ष सत्य-चिन्तन करके तुम्हारा मस्तिष्क कितने ही अनुचित विचारों और विवादों से मुक्त हुआ उसी तरह सत्य पर आचरण करके तुम्हारी जीवनशक्ति कितनी ही अनुचित जीवन शक्तियों के दुराग्रह से मुक्त हो सकती है। बोध या ज्ञान केवल बुद्धि के ही तल पर नहीं होता। एक और ज्ञान है जो सांसो के तल पर, बल के तल पर, वीर्यम् के तल पर होता

है और इसकी भाषा विचारों की भाषा नहीं है। पूर्ण ज्ञान पूर्वजन्म में हो लेने के पश्चात् भी महावीर को एक जन्म और लेना पड़ता है। इस नाव को किनारे पर छोड़ जाने के लिये गूंगी और असभ्य कर्म-शक्तियों के तल पर भी वे सविन का आव्हान करते हैं। पंडित ईश्वर चन्द्र विद्यासागर से एक बार किसी मां ने कहा कि मेरे लड़के को मिठाई खाने की बहुत आदत है इसे छुड़वा दो। उन्होंने कहा अच्छा। छः माह बाद उसे मेरे पास लाना। छः माह बाद वह लड़का उनके पास लाया गया। उन्होंने कहा कि तुम मिठाई बहुत खाते हो मत खाया करो और उसने मिठाई खाना छोड़ दिया। लोगों ने उनसे कहा कि मामूली सी बात कहने के लिये तुमने छः माह क्यों लिये? उन्होंने कहा कि छः माह पहले मैं स्वयं बहुत मिठाई खाता था उस समय उस लड़के को उपदेश देता तो वह निष्फल होता इस बीच मैंने अभ्यास करके मिठाई छोड़ दी। इस छोटी सी कहानी में भी वही बात है। विचारों के तल पर एक संघर्ष है जो एक सच्चा विद्यार्थी निष्पक्ष और निःस्वार्थ निर्भय ज्ञान अर्जन में जीत लेता है परन्तु वह पर्याप्त नहीं है। एक और स्वतंत्रता है जो उसे जीतनी है वह है जीवन शक्ति के तल की। अनेकों दुष्ट इच्छाएं, प्रवृत्तियें और प्रेरणाए हमारे भीतर रोज़ उठ रही है। जब तक हम इन पर विजय नही पा लेते तब तक हम मनुष्यता का दीप पृथ्वी पर नही जला सकते। समस्त ज्ञान व्यर्थ हो जाएगा। इसके जीतने का एकमात्र मार्ग है विनय और सम्यक् चरित्र। यह कोई बाहर से लादा हुआ अनुशासन नही है बल्कि स्वयं अनुभव है। भगवान महावीर यह कहते हैं कि अनुभव जो हमें सिखा रहा है रोजाना के जीवन की घटनाओं में उससे हम लाभ नही उठा रहे है। इस कारण हम वही रुक गये है। हमें वीरता और साहस के साथ अपने अनुभवों को एकमात्र प्रकाश मानकर पग-२ पर शान्ति और धैर्य के साथ मनन करके बढ़ना है। जब कर्मशक्ति ऐसा करेगी तो वह स्वयं विकसित होगी। उसका स्वयं का तप उसके विकास का कारण होगा और यह उसकी

चिरस्थाई सम्पत्ति होगी। इसी सम्पत्ति को पा लेने पर एक महावीर या बुद्ध इतना साहसी और सक्त हो जाता है कि जिस उद्देश्य के लिये उसने इस शक्ति को परिष्कृत किया एक क्षण ऐसा भी आता है कि वह उस उद्देश्य को भी ठुकरा देता है। मोक्ष के द्वार पर पहुंच कर महावीर मोक्ष में प्रवेश करने से इन्कार कर देते हैं क्योंकि जब तक एक भी जीव जीवन समुद्र में तड़प रहा है और उसे मार्ग नहीं मिल रहा है तब तक उदात्त पुरुष महावीर की जीवनशक्ति और उसकी असीम करुणा कैसे गवारा कर सकती है कि वह अकेला मोक्ष में प्रवेश करले। वह लौट-२ कर पृथ्वी पर आता है। यह उस जीवन शक्ति की परिपूर्ण मुक्ति है। यही निर्वाण है।

मनुष्य की कर्मशक्ति एक वृक्ष की तरह है और असंख्य शाखों में फूटती रहती है। कोई शाख ऊपर को जाती है तो कोई नीचे की ओर। जैसा स्थान, जलवायु और वातावरण वृक्ष को मिलता है उस के अनुसार वह बढ़ता है। इसी तरह जैसा समाज, मान्यताएं, विश्वास आदि मनुष्य को मिलते हैं उसी के अनुरूप यह कर्मशक्ति ढलती जाती है। बचपन में यह समाज उसकी मूल प्रवृत्तियों को जगाता है और उनका पोषण करता है परन्तु बड़े होने पर उन्हीं प्रवृत्तियों को दुराग्रह और भ्रष्टता कहता है और उनका दमन करने का उपदेश देता है। धीरे-धीरे कर्मशक्ति एक ऐसा वृक्ष बन जाती है जिसकी टहनियां स्वयं उस वृक्ष को दबाती है। नीचे से वृक्ष के तने में जीवनशक्ति जोर मारती है कि वह ऊपर उठे परन्तु ऊपर से टहनियां उसी वृक्ष को नीचे को दबाती है क्योंकि जिन प्रेरणाओं को लेकर यह वृक्ष उठ रहा है वे समाज को मान्य नहीं है। इस तरह मनुष्य का जीवन प्रवाह यवा होते-होते विरोधों का जमघट हो जाता है। उसकी कर्मशक्ति भ्रमित हो जाती है। जीवनशक्ति के तल पर वह पूरी तरह उलझ जाता है। जीवनशक्ति को यहीं छोड़कर वह प्रयाण कर लेता है और मस्तिष्क के तल पर जीने लगता है। उसकी जीवनशक्ति अनेकों निषेधों, गुप्त इच्छाओं, वासनाओं

के बीच उलझकर रुक जाती है। यह अनुभव हम सबका है। वे जो कहते हैं कि महावीर पलायन कर गये, घर छोड़कर भाग गये वे भूल कर रहे है क्योंकि पलायन महावीर नही कर गये पलायन तो हर व्यक्ति अपने जीवन में कर रहा है। जैसे ही जीवनशक्ति उलझी वह उसका त्यागकर मस्तिष्क के तल पर आ जाता है जो अपेक्षाकृत सुलझा हुआ है। महावीर तो यह कहते है कि पलायन करना कायरता है। जीवनशक्ति का त्याग कर मस्तिष्क के तल पर चले जाना कायरता है। उससे जीवन का कल्याण नहीं होता। जीवन का कल्याण तभी होता है जब हम जीवन प्रवाह के तल पर, कर्मशक्तियों के तल पर जीयें जहां यह विघटित और उलझा हुआ समाज रोजाना उलझनें और घुटन पैदा कर रहा है। मनुष्य उनके बीच रहकर उनसे मुक्ति का मार्ग खोजे। दूसरी उपमा पर ध्यान दें। एक समुद्र है जिसमें जीवनशक्ति एक लहर की तरह पड़ी है। इसे अनेक विरोधी शक्तिएं आकर घेर लेती हैं। वे अनेकों लहरों की ही शक्ल मे हैं। अनोखा खेल यह खेलना है कि इन लहरों के बीच भी वह लहर बिन टूटे चलती रहे और बड़ी होती रहे। महावीर कहते हैं कि जीवनशक्ति के तल पर मुक्ति प्राप्त करने का अनोखा खेल खेलना है। अहिंसा, अपरिग्रह, क्रोधहीनता, प्रेम, क्षमा आदि को वे इसलिये महत्व देते है कि इस कठिन उद्देश्य की पूर्ति में यही शस्त्र सहायक सिद्ध होंगे। उससे अलग इनका अपने मे कोई मूल्य नही है। अहिंसा संघर्ष से भागना नहीं है बल्कि सफल संघर्ष करने का तरीका है।

नारी और मोक्ष

यदि हम जरा गम्भीरता से सोचें तो हम पाते हैं कि आज के पश्चिमी जगत में चल रहे लिब मूवमेण्ट, नारी स्वतन्त्रता, आंदोलन का कारण वह विचारधारा है जिसने नारी को केवल समर्पण का मार्ग दिखाया। महावीर की मान्यता इसके सर्वथा विपरीत थी। यदि महावीर के विचारों को सही तरह समझ लिया जाय तो आज की प्रगतिशील नारी अपने को ऐसे आन्दोलनों में नष्ट करने से बचा लेगी। उसकी व्यथा सही है परन्तु उसने जो निदान ढूंढा है वह गलत है। वह विद्रोह कर रही है पुरुष से। इस तरह वह पुरुष तत्व को हमेशा के लिये अपने से दूर कर रही है। मनोवैज्ञानिकों की दृष्टि से यह खतरनाक कदम है। प्रत्येक मनुष्य में नारी और पुरुष दोनों तत्व हैं। उसमें समर्पण करने वाला भी है और वह भी है जिसे समर्पित किया जाता है। अधिकांश कर्मप्रणेताओं ने सिखाया है समर्पित होना। उन्होंने मनुष्यों से अपेक्षा की कि वह ईश्वर को समर्पित हो जाँय। महावीर ने कहा कि तुम स्वयं ईश्वर हो अपने को समर्पित हो जाओ। अपने इस वाक्य में महावीर ने उस वेदान्त का, उस एकत्व का व्यवहारिक प्रदर्शन किया है जो वेदान्त में कोरा विचार बनकर रह गया। मेरे विचार से जो परम्परा भारतीयों ने, वेदों ने और उपनिषदों ने एकता को खोजने की शुरू की थी और जिसे शंकराचार्य, याज्ञवल्क्य आदि ने एक ब्रह्मरूप में जानकर बौद्धिक रूप दिया था, उसी परम्परा को भगवान महावीर ने व्यवहारिक जीवन में चरितार्थ करने का मार्ग बनाया है। वह परम्परा शंकराचार्य में बौद्धिक चेष्टा बनकर रुक गई क्योंकि वेदान्त ने व्यवहारिक जीवन में कदम-कदम पर उस विश्वास को व्यवहृत

करने का मार्ग नही सझाया। महावीर ने अनेकान्तवाद, जीव पुद्गल, अपरिग्रह, अहिंसा, विनय के द्वारा एक मार्ग सझाया है कि कैसे जीवन की इस विविधता मे एकता को प्राप्त कर सकते है। वह जो ब्रह्मरूप मे निराकार है वही महावीर की वाणी मे जीव तत्त्व बनकर साकार हो गया। समस्त जीवो मे एकता का दर्शन महावीर ने किया। अत: वे लोग बहुत भूल करते है जो महावीर के दर्शन को प्लूरलिस्टिक रियलिज्म कहते हैं। दरअसल महावीर उन चिन्तको मे से थे जिन्होंने यह जान लिया था कि चिन्तन किस सीमा तक सामान्य मनुष्य के लिये हितकर है और उसके बाद किस प्रकार व्यवहारिक तल पर उसका अनुभव मे परिणत होना आवश्यक है। वे जान गये थे यदि वह चिन्तन अनुभव मे परिणत न किया और उसे हम बढाते चले गये तो हम बुद्धि के पार निकल जायेंगे। बुद्धि का सदुपयोग न कर सकेंगे और सच्चरित्रता की आवश्यकता को भी नही समझ सकेंगे। प्राणी का प्राणी के प्रति जो व्यवहार है उसकी कोमलता और बारीकियों को वह व्यक्ति नजरअन्दाज कर देगा जो निरन्तर "वन ट्रेक" मस्तिष्क लेकर पूर्ण ब्रह्म की तलाश मे निकल जायेगा। अत. महावीर ने विषद् दार्शनिक विषयो पर शिष्यों से वार्ता नही की। केवल उतना ही दार्शनिक विवेचन किया जितना जीवन को व्यवहारिक बोध तथा चारित्रिक उज्ज्वलता प्राप्त करने हेतु आवश्यक था। उसके बाद महावीर ने पूरा जोर चरित्र निर्माण पर दिया। वे जानते थे कि इसके आगे वह बौद्धिक ऊँचाइएँ है जिन्हे पार करने के लिये मजबूत पखो की जरूरत है। जो व्यक्ति चारित्रिक दृढता नही प्राप्त करेगा वह बौद्धिक शून्यों की ओर निर्विरोध बढता जायगा। शून्य मे पहचानने के लिये चारित्रिक आखो की जरूरत है और चरित्र के मायने मनोवैज्ञानिको ने केवल एक लगाये है अनेक मे एक के दर्शन होना। "आत्मवत् सर्वभूतेषु" सभी प्राणियो को अपने जैसा रीएलाइज करना। महावीर ने चरित्र के लिये कुछ नैतिक मूल्यो का बखान नही किया जिससे चरित्र को दबाया या

मोड़ा जाय। चरित्र तक को बढ़ना है। महावीर कहते हैं कि इसकी शक्तिएँ अनेकों शक्तियों में उद्भ्रान्त होंगी और उनसे विरोधी शक्तियों का जन्म होगा। यदि हम इसकी मलभूत एकता को नहीं जानेंगे, यह जीवनशक्ति जो हम में ज़ोर मार रही है यह हमें विनाश की ओर ले जायेगी, प्रलय की ओर ले जायेगी यदि हम इसमें उद्देश्य की जाग्रति नही करेंगे। और उद्देश्य की जाग्रति इसमें होती है तब जब इसमें अनेकों ज़िद करती धारों को मना लें और उन्हें समझा सकें कि वह जो केन्द्रिक ज़ोर है उसकी पूर्ति में इन सबकी पूर्ति हो जाती है। यह बहुत कठिन कार्य महावीर ने अपने हाथों मे लिया था। हनरीबर्गसां नें जिस (इलानवाइटल) जीवनशक्ति को निरंकुश, अगम्य, विहमना प्रवाह कहा था महावीर ने उसी मे उद्देश्य का आह्वान किया और उसे मानवीय स्वरूप मे मोड़ा। यह ईश्वर के साथ सहयोग था। वे जो सोचते हैं कि महावीर ने पौराणिक ज्ञान का विरोध किया वे भी गलत हैं। वास्तव में महावीर उस परम्परा के पुत्र थे। उसके विरोध प्रवाह नहीं थे। पुराणों में मनुष्य की रचना के पश्चात् ब्रह्मा ने मनुष्य को छोड़ दिया कि वह उनके उद्देश्य की पूर्ति करे। मन के समक्ष भी वही जीवन प्रवाह अनर्गल शोरों मे भरा हुआ मचल रहा था। भगवान महावीर मनुपुत्र ने उसे देखा। वही वह अनन्य तीव्र उज्ज्वल फेनिल प्रवाह था जिसे हेनरीबर्गसां देख रहा था। परन्तु दोनों की दृष्टि मे अन्तर था। महावीर ईश्वर के आदेश को नहीं भूला था और उसने जाना था कि उसे काम मिला है। इस प्रवाह को उद्देश्य देना, इसे मानवीय गणों मे अलंकृत करना, इसके पोरों मे मानवीय पीड़ा भर देना। इसकी निरंकुश निरुद्देश्य गति को मानवीय करना और प्रेम मे आन्दोलित एक संगीतमय प्रवाह बना देना, इस शून्य को पुनः सृष्टि मे भर देना।

महावीर का पूरा ज़ोर चरित्र के गठन पर था और चरित्र का निर्माण उन्होंने निषेधों मे नहीं किया। उनका ब्रह्मचर्य और अहिंसा

निषेध नहीं थे, विपरीतों के समन्वय थे जिससे विपरीत शेष हो जाय और जीवन एक सम्बद्ध पूर्णता बनकर, एक ही प्रवाह बनकर उद्घटित हो। उनका उद्देश्य था कि व्यवहारिक तल पर मनुष्य में (कन्टाड्रिक्शन) विरोध न रहे। उन्होंने जीवन प्रवाह को एकसूत्र में जगाना चाहा था। इसलिये वह समर्पित होने वाले और जिसके प्रति समर्पण होना है इनके द्वैत को भी नहीं रहने देना चाहते थे। वे जानते थे कि इस प्रकार मनुष्य का विकास सम्भव नहीं है। यह ठीक भी था। यदि मैं किसी आदर्श या देवता को समर्पित होता हूं तो मैं निःसंदेह उससे अलग हूं। इस स्थिति में उसको कभी भी समर्पित नहीं हो सकता। मैं केवल उसकी कल्पनाकृत आकृति, इमेज को समर्पित हूंगा जो मेरे मन में बनी है। वह व्यक्ति क्या है? जरूरी नहीं कि वह उस इमेज जैसा ही हो। महावीर का कहना है कि यह इमेज का द्वैत रखा क्यों जाय? क्यों न मैं स्वयं में वह व्यक्ति बन जाऊं जिसको मुझे समर्पित होना है? उन्होंने प्रेम की उस पराकाष्ठा को छुआ है जहां श्याम राधा हो जाते हैं और राधा श्याम हो जाती है। इस तरह आत्मसात हो जाने पर हम जिसे समर्पित होंगे वह कल्पाकृत या इमेज नहीं होगा बल्कि वह वास्तव में वह पुरुष होगा जिसको हम समर्पित होना चाहते हैं। महावीर ने यह जाना था कि मनुष्य में पुरुष और समर्पित होने वाली नारी ये दोनों ही तत्व विद्यमान हैं। उन्होंने इसलिये इतना कहा कि इस पुरुष तत्व को उस आदर्श पुरुष से आत्मसात कर दो जिसे तुम समर्पित होना चाहते हो। इसका विकास उसी दिशा में होगा जिस दिशा में वह चलकर आदर्श पुरुष बना, विकसित हुआ और तीर्थंकर बना। इस तरह तुम्हारा पुरुष तत्व स्वयं पूर्णतया विकसित हो जाय और फिर तुम्हारा नारी तत्व उसे समर्पित हो जाय तो द्वैत का अन्त हो जायगा। यह मनुष्य के मानसिक क्षोभ का अन्त होगा। यह जितना विरोध, क्षोभ और विद्रोह उसके मानसिक तल को जला रहा है इसका अन्त करने का एकमात्र उपाय यही है कि इसमें निहित एकता तत्व को जगाया जाय। जब वह

एकता तत्व विकसित होगा तो वही शक्ति जो अनेक विरोधों में बिखर कर हमारे मानसिक क्षितिज को काला कर रही है बदलकर विकास की प्रखर किरण बन जाएगी। "अमृत भी वही हलाहल है जो, मालूम नही तुझको अन्दाज है पीने के।" प्रकृति के गहन गर्भ में हो रही इस किमियागरी को महावीर ने हजारों वर्ष पहले पहचाना था। यह एक सूर्यरश्मि का रंग टूटकर कैसे सात रंगों में इन्द्रधनुष बन जाता है! कैसे वही चीज सड़कर रस बन जाती है! यह आश्चर्य जो हम अपने जीवन में पदार्थों के बीच देख रहे है हमारे मनस में भी घट रहा है। अनेकों अंधेरे है जो अचानक घनीभूत होकर प्रकाश हो जाते है। कितने ही विष है जो अचानक अमृत में बदल जाते है। एक विचित्र व्यथा है मनुष्य के मानसिक अंधेरों की जिसे महावीर ने सुना था। उसने जाना था इस तल पर मानसिक हिंसा काम नही देती। परिग्रह और आग्रह काम नही देते। यह तल बहुत नाजुक है जहां विकृतियां और सत्य का उद्गम यदि हम जान ले तो चित्त उद्गम के उस स्रोत को पा लेंगे जिससे फूट कर रसों के झरने समस्त मानसिक क्षितिज को माधुर्य से, उल्लास से भर देंगे। उसी को उन्होंने निर्वाण कहा था।

आज के मनोवैज्ञानिकों ने उस प्रकाश की कहीं-कहीं झलक देखी है जिसे पूर्णरूप में महावीर ने देखा था। उनकी अहिंसा कर्मठता से दूर भागने का मार्ग नही है। वे तो यह बता रहे है कि इन घपलों में इस प्रकार के शस्त्रों से काम नहीं चलता। महावीर योद्धा थे। उन्होंने इतना जाना था कि कुछ लड़ाइयाँ ऐसी है जिनमें जीत उनकी होगी जिनके हाथों में तलवार नहीं है। महावीर का मार्ग कलाकार का मार्ग है। सौन्दर्यबोधियों का मार्ग है। यह एक ऐसा नाजुक मार्ग है जिसे थोड़ी सी तर्क की प्रवंचना भंग कर देगी। इसकी पूर्णता और सौन्दर्यता अनुभव करने के लिये एक सूक्ष्म बुद्धि और भावना का होना अनिवार्य है।

महावीर ने नारी को धिक्कारा नही। महावीर ने नारी को

निर्वाण के अनुपयुक्त भी नही कहा। दरअसल समस्त जैन विचारधारा नारी के प्रति हीन भावनाओं के विरुद्ध है। श्वेताम्बरों के अनुसार स्वयं मल्लिनाथ तीर्थंकर एक नारी थे। केवल एक बात पर महावीर ने जोर दिया। वह पुरुष सिंह थे। उनका जीवन दर्शन व्यवहारिक था। वे किसी कोमल ख्याल के सहारे यथार्थ से आंख नही मीच सकते थे। उन्होंने अनुभवों से जाना था कि केवल समर्पण का पाठ, स्वाभाविक रूप में जो नारी लेती है, उसका उनके युग में और उससे पूर्व बहुत दुरुपयोग हुआ। आदिकाल से पुरुष ने नारी में समर्पण भावना को उकसाया है और आज वह उसका स्वभाव बन गया है। यह समर्पण भाव वह एक दुष्ट व्यक्ति के प्रति भी उसी श्रद्धा से रखती है यदि वह उसके जीवन का प्रणेता बन जाय। महावीर ने जाना था इस प्रकार नारी समर्पण-आग्रह करके सदाचार से गिरी है। सत्य से दूर हटी है। उन्होंने नारी का नहीं, समर्पण की इस एकांगी भावना का तिरस्कार किया। उन्होंने नारी को अपनी ऐतिहासिक भूल सुधारने के लिये ललकारा। इतिहास के शुरू से मनुष्य ने जो भूल की थी और शतरूपा को सगिनी न बनाकर एक दासी बनाया था महावीर ने इस परम्परा को ललकारा था। महावीर ने नारी से कहा कि जब तक तुम अपने में उस पुरुष को नही जगाओगी जिसके प्रति तुम्हें समर्पित होना है तब तक तुम्हें निर्वाण नही हो सकता। वह पुरुष तत्व तुममें भी उसी तरह है जिस तरह पुरुषों में है। तुम उसे भूल गई हो और उसकी पूर्ति भौतिक पुरुषों में ढूढ रही हो। भौतिक पुरुष भौतिक नारी की पूर्ति कर सकता है परन्तु मानसिक नारी का समर्पण ग्रहण करने का अधिकार केवल उस मानसिक पुरुष को है जिसे मनुष्य जाति ने इतिहास के शुरू से नारी के मनस अंधेरों में सुला दिया था। सम्भवत: पुरुष की लोलुपता और शासन की प्रवंचना इसके पीछे उद्देश्य रही है। परन्तु महावीर तो शासन, दर्शन और अनेक संकीर्णताओं से ऊपर उठ चुके थे। वे कब इस विडम्बना को स्वीकार करते। उन्होंने नारी के लिये वह मार्ग प्रशस्त

किया जो नारी आज तक खोज-खोज कर भी न खोज सकी और टूटती ही गई। आज की क्लान्त पथभ्रष्ट पश्चिमी नारी जो हाथों में आजादी के झण्डे लिये पुरुष विरोधी नारे लगाती फिर रही है वह अपने मन में नये अंधेरे रच रही है उस पुरुष को भुलाए रखने के लिये जिसे हजारों वर्ष पूर्व उसमें सुला दिया गया था। यह आधुनिक लिब मूवमेण्ट वाली नारी भी पुरुष की दासता में बंधी है। यह केवल उस दासता का दूसरा रूप है। महावीर ने बताया कि विपरीतों को जीतने का मार्ग विरोध नहीं है परन्तु वैपरीत्य को अनावश्यक कर देना है। वह पुरुष जिससे उन्हें दासता और गुलामी मिली है उससे मुक्ति का मार्ग उससे विरोध या उसके प्रति विद्रोह नहीं है बल्कि स्वयं अपने में सोये पुरुष को जगा लेना है। महावीर का मार्ग आक्रामक है क्योंकि वह योद्धा है। महावीर एक्टिव है पैसिव नहीं। वह नारी से भी यही कहते हैं कि पैसिव बनने से तुम अपने स्वरूप को प्राप्त नहीं हो सकती। केवल आत्मसमर्पण एक अधेरा है, एक भूल है। उस पुरुष को आत्मसात करो जिसे समर्पित होना चाहते हो। वह पुरुष तत्व तुममें सो रहा है। सम्भवतः मनुष्य जाति में सिवाय महावीर और बुद्ध के कोई भी अन्य विचारक ऐसा नहीं हुआ जिसने नारी को सही जागृति का यह मार्ग दिखाया हो। यह दो महापुरुष वास्तव में पुरुष की परिधियों से ऊपर उठ गये जहां से वह पुरुष-नारी को समान स्तर पर देख सकते थे। उन्हें पुरुष और नारी में कोई जैविक भेद नहीं मिला। अन्तर था केवल दृढ़ता (Emphasis) का, जोर का। शारीरिक भेद केवल शरीर तक ही सीमित है। उन्होंने जाना था कि मानसिक तल पर नारी में पुरुष से भेद किसी ऐतिहासिक भूल के कारण अधिक उत्पन्न हुए हैं, इतने हैं नहीं। उस भूल से नारी और पुरुष के बीच समान बन्धुता के बन्धन टूट गये, एक स्वामी बन गया एक दासी बन गई। उस दासी के मन में स्वामी के प्रति क्षोभ आना ही था। आज का लिब मूवमेण्ट उस विचारधारा की स्वाभाविक उपलब्धि है जो पुरुष ने व्यवहारिक तल पर नारी पर लादी है। ढाई

हजार वर्ष पूर्व कालातीत पुरुष महावीर का हृदय इस अन्याय के प्रति क्रन्दन कर उठा और उसने साधारण व्यक्तियों की तरह इसके विरुद्ध आवाज़ न उठाकर सूक्ष्म रूप में जन-जन को सम्बोधित किया और बताया कि नारी के मनस में एक पुरुष छिपा हुआ है और जिस दिन वह सिंह उठेगा और आदर्श पुरुष होने का उपक्रम करेगा उस दिन नारी की समर्पित होने की कामना फलीभूत होगी। वह निर्वाण प्राप्त कर सकेगी। इसी तरह का संदेश बुद्ध ने आनन्द को दिया जब गौतमी ५०० रानियों के साथ उनसे दीक्षा लेने आई थी। नारी का स्वभाव कृत्रिम करके उसके प्रति दयाभाव दिखाना ऐसा ही है जैसे किसी को अपाहिज करके उस पर दयाभाव दिखाना। ऐसा ही दयाभाव मनुष्य समाज नारी को देता आया है। महावीर ने कहा नारी को इस दया की ज़रूरत नहीं है। उसे अपना स्वरूप समझने दो, उसमें केवल समर्पण की शक्ति को प्रबल करके उसे अंधेरों में भटका दिया गया है। उसमें उस पुरुष को जगने दो जिसकी पुकार पर यह समर्पित होने वाली शक्ति पुनः लौटकर उस पुरुष में लीन होगी। तब वह भी उसी तरह निर्वाण को प्राप्त कर लेगी। कितनी विडम्बना है कि नारी को दास बनाये रखने वालों ने महावीर के इन विचारों का भी शोषण कर लिया। वह युगातीत पुरुष जो हमेशा के लिये नारी को इन झूठी मान्यताओं से मुक्त कराकर सत्य के पथ पर आरूढ़ करना चाहता था उसे ही उस विचार का जन्मदाता मान लिया जो नारी के लिये मोक्ष प्राप्ति असम्भव बताता है। परन्तु युग चेत रहा है। अधिक दिन तक लोलुप व्यक्तियों की विचार-रचना नारी को बंधित नहीं रख सकेगी। यदि मनुष्य जाति ने समय से महावीर के विचारों को अपने में स्थान न दिया और अपनी इस ऐतिहासिक भूल को न सुधारा तो लिब मूवमेण्ट तथा अन्य मार्गों से नारी विद्रोह करेगी। मनुष्य जाति की पूर्ण शक्ति दो विरोधी कैम्पों में टूट जाएगी। देवासुर संग्राम इसी धरा पर होगा। मनु और शतरूपा जिन्हें ब्रह्मा ने इस उद्देश्य से रचा था कि वे मनुष्य तत्वों को

स्थायी करें, मानव बुद्धि, मानव आदर्श लेकर एक सबद और आनन्दमय संसार की रचना करें, वे ही मन और आत्मा एक दूसरे के साथ हो जाएंगे। आज के युग संदर्भ में महावीर के विचार अमत महत्व है।

आधुनिक नारी की समस्या का निदान महावीर के विचारों में है। यदि हम यह चाहते हैं कि यह महान नारी-शक्ति, पुरुष-शक्ति की सहायक बने और पूर्ण मनुष्य जाति एकाग्र होकर विकास मार्ग पर बढ़ सके तो जरूरी है कि महावीर के विचारों के प्रकाश में हम अपनी ऐतिहासिक भूलों को सुधारें। नारी को निर्भय और निःस्वार्थ होकर उसका सही स्वरूप समझने में मदद करें। उसे बताये कि वह मानसिक तल पर पुरुष की पूरक नहीं है। उस तल पर पुरुष और नारी में अन्तर नहीं है। वह उसी तरह मोक्ष प्राप्त कर सकती है जिस तरह पुरुष।

एक बात ध्यान देने की है कि महावीर नारी उपासक नहीं है। उन्होंने नारी शक्ति को कोई आध्यात्मिक महत्व नहीं दिया। इसलिये उन्हें कभी यह जरूरत नहीं पड़ी कि वे नारी की निन्दा करें। उनका दर्शन नारीत्व और पौरुष को कण्डील समझना है जिसकी विभिन्नता से आत्मा का वह प्रकाश विभिन्न नहीं हो जाता जो दोनों कण्डीलों में समान रूप से जल रहा है। नारीत्व और पौरुष शारीरिक भिन्नताएं हैं। इनसे मनोवैज्ञानिक भिन्नताएं भी उत्पन्न हो जाती है। नारी की स्थिति मनुष्य समाज में शोषित की रही है परन्तु यह नहीं भूलना है कि उसकी स्थिति मोहिनी और मोहिता की भी है। मनुष्य समाज ने नारी को जो मनोवैज्ञानिक चादर दी है वह बहुत उलझी हुई और झूठी है। नारी को उसका त्याग करना होगा यदि वह आत्मा का विकास चाहती है।

सुन्दरम्—

महावीर का जीवन-दर्शन सुन्दरम् की प्राप्ति के लिये की गई एक एक्सरसाइज़ है। प्रत्येक मनुष्य का चित्त सुन्दरम् में रमा हुआ है। या तो वह सुन्दर होना चाहता है या सुन्दर वस्तुओं को प्राप्त करना चाहता है। उसकी इस कामना का दमन महावीर नहीं सिखाते। यह तो हिंसा होगी। महावीर सिखाते हैं वह मार्ग जिसके द्वारा सचमुच सुन्दर हुआ जा सकता है। सौन्दर्य प्रसाधन और शारीरिक रख-रखाव हमें सुन्दर नहीं बनाते। साधारण मनुष्य भी बहुत जल्दी जीवन में इस तथ्य को अनुभव से जान जाते हैं। इसी कारण उच्च और प्रगतिशील समाज अत्यधिक सौन्दर्य प्रसाधनों को हीनता की नजर से देखते हैं। वे प्राकृतिक सुन्दरता को सच्चा सौन्दर्य मानते हैं। महावीर यही बताते हैं कि यह प्राकृतिक सुन्दरता कैसे प्राप्त की जा सकती है। शरीर में अनेक शक्तियां हैं जो उम्र के साथ प्रकट होती जाती हैं। हर आने वाला दिन कुछ और नई शक्तियों को जन्म दे देता है हममें। इन शक्तियों को सुर-नियन्त्रित रखना ही सुन्दरता को जन्म देता है। आज आदमी इन शक्तियों का दमन कर रहा है और चोरी छिपे इन्हें एक भद्दी अभिव्यक्ति दे रहा है। उसका जीवन सुन्दरता शून्य होता जा रहा है। महावीर इन्हीं शक्तियों के सन्तुलन, उचित प्रयोग की बात कहते हैं। सुन्दरता (Austerity) संयम से जन्म लेती है। एक कुमारी के सौन्दर्य से सभी प्रभावित होते हैं क्योंकि उसकी शक्तियों ने अभी भोग नहीं जाना। अभी उसकी शक्तियां त्रिपुरा और प्रकृति के आर्केस्ट्रा में सुरबद्ध हैं। यौन के अनुभव के बाद यह आर्केस्ट्रा टूट जायेगा। एक मोहक नीद से जीवन अंगड़ाई लेकर उठ खड़ा होगा।

तब जरूरत पड़ेगी एक नये संगीतकार की जो इन बिखरे स्वरों को फिर एक आर्केस्ट्रा मे संजो दें। भोग प्राप्त होने तक प्रकृति और त्रिगुण दिव्य संगीतकार बन हमारी शक्तियों को सुरबद्ध किये रहते है। परन्तु भोग के पश्चात् वे हमे हमारे हाल पर छोड देते है। शक्तिएं पछाड खाकर शरीर के भीतर गहाओं में गिर जाती है। एक विप्लव शुरू होता है। यह कठिन समय है। अब आत्मा के जगने का समय है। अब प्रमाद काम नहीं देता। आज तक आत्मा सुन्दरता के हिंडोलो में झूल रही थी। अनायास ही सुन्दरस् उसकी पलकों पर विचर रहा था। उसके मानस मे स्वतः ही कमल सरोवर खिल रहे थे। मातृ शक्ति पूर्ति कर रही थी। अब पुरुष शक्ति के जगने की बेला है। यह श्रम है, पुरुषार्थ है, संघर्ष है। जो अनायास ही प्राप्त था उसे भोग का एक अनुभव नष्ट कर देता है। अब उस सुन्दरस् का अनुभव दुबारा तब तक नहीं किया जा सकता जब तक पुरुष शक्ति दर्शक गैलरी से उठकर संगीतकार नहीं बन जाती। भोग अपने मे बुरे नहीं है। पर स्वरों की टूट-फूट जो भोग के बाद हममें होती है उन्हे बुरा कर देती है। यह जो दुर्जेय आत्मा है यह अपनी इन्द्रियों के द्वारा उस सुन्दरता का रस लेने की आदी हो गई है। ब्रह्मचर्य (Austerity), का त्याग कर उसने एक रात में दिव्य आत्माओं को नष्ट कर दिया।

यह आत्मा प्रमादमय हो गयी है। इसमें अहकार, ममत्व, मोह का अभ्युदय हो चुका है। जब तक मानव इन पदार्थो से पुनः अपने को मुक्त नहीं कर लेता तब तक उसे पुनः सौन्दर्य बोध नहीं होगा। यह तभी होगा जब आत्मा का विहान होगा। उसे उससे अधिक विकसित होना होगा जैसा वह था। उसका जीवन द्वैत से शुरू हुआ जैसा हर बच्चे का होता है। बच्चा और मां एक दूसरे से अभिन्न है। बच्चा मां के बिना नहीं जी सकता। वह उसे दूध पिलाती है उसकी दिनचर्या चलाती है। पर जब वह बड़ा होता है तो एक दिन मा उसका यह काम करना बन्द कर देती है। वह दिन आया है जब उसे द्वैत का त्याग कर

एकत्व में जागना है। अब मां को वह अपना आधा व्यक्तित्व नहीं समझ सकता। अब उसे अपने में ही सारी शक्ति के उद्गम को ढूंढना है। द्वैत की स्थिति बड़े आराम की है। पर इसमें हमेशा नहीं रहा जा सकता। इसका त्याग कर एकत्व में जीना अनिवार्य है। जो इस बात को नहीं समझते वे जीवन भर मे शर्माते रहते हैं। मां की गोद मे उतर जाने के बाद भी उसी गोद मे लौट जाने के सपने देखते रहते हैं। वे अविकसित सतत हैं। महावीर उस पुरुष सिंह को जगाते हैं हममें जिससे हम और मातृशक्ति ये दोनों प्रगट हुए। इस द्वैत के तल पर मर जाना है—एक ऐसी दिव्य मृत्यु, जिसे, "प्लेटो" के शब्दों में, केवल दार्शनिक ही जानते हैं। कोई भी चीज नहीं मरती—

Nothing of him that doth fade
All but suffers a sea change
Into something glorious and strange

महावीर उस लाचार, बेसहारा स्थिति को जीवन के लिये अपमानजनक मानते हैं जब हम मातृशक्ति के लिये भटक रहे हों। यह भटक हम सबके जीवन मे लगी है। वे कहते हैं उस उद्गम को ढूंढ लें जिससे यह शक्ति प्रगट होती है। वहां तक पहुंचने के लिये उस व्यक्तित्व को मरना होगा जो हम हैं। यह मानसिक मृत्यु दीप का बुझ जाना है। कोई भी चीज़ नहीं मरती। विधिपूर्वक, अदा से इस तल पर जो मरना जानता है वह एक उच्च तल पर जियेगा, उन अलभ्य स्रोतों मे जहां द्वैत नहीं है। इस पौरुष के जगाने के लिये संयम की जरूरत होगी क्योंकि यह वह पुरुष है जिसमें सुन्दरम् अभिन्न है, जिससे सुन्दरता अनन्त धारों में सतत् फूट रही है। सुन्दरता का उपभोग कर जीना आसान है परन्तु उसे अपने मे ही जन्म देना कठिन है। जो ऐसा करते हैं वे जान जाते हैं कि इस पवित्र फल को कैसे रखा जाता है। इसका मूल्य तब तक समझ में नहीं आता जब तक हम इसे अपने मे जन्म नहीं देते। कोई भी व्यक्ति सुन्दरता का मूल्य, उसकी रक्षा की महत्ता, संयम की

आवश्यकता, तब तक नहीं समझता जब तक उसकी पुत्री एक सुन्दर युवती न बन जाय। तब फिकर लगती है। तब वह अनायास ही सुन्दरता का पिता हो जाता है। इसी कारण शास्त्रकारों ने स्वर्ग प्राप्ति के लिये पुत्री का होना भी आवश्यक बताया था। इससे यह दुर्जेय आत्मा सुन्दरता को कुछ देना सीखती है अन्यथा अपनी इन्द्रियों की इच्छा पर वह सिर्फ सुन्दरता से प्राप्ति खोजती है। सुन्दरता का प्रणेता होना यही महावीर का दर्शन है। सुन्दरता का लोभी होना दासता है। सुन्दरता के रस में ही लिप्त रहना द्वैत है। सुन्दरता का त्याग करने को महावीर कहते हैं तो इसके मायने ये नहीं कि सुन्दरता से सब सम्बन्ध छिन्न हो जायेंगे। जो आत्मा सुन्दरता का ही आगार है वह सुन्दरता से अलग कैसे होगा। परन्तु निश्चित् रूप से महावीर कहते हैं कि जगत में सुन्दर लगती चीजों का भी त्याग कर दो। इसके मायने हैं कि एक जगह त्यागोगे तो दूसरी जगह पाओगे। इस तल पर दार्शनिक सत्य को प्राप्त हो जाओ ताकि अगम्य गहराइयों में तुम्हारी ही आत्मा की सुन्दरता फूट पड़े। तुम्हारी आत्मा ही आन्तरिक सुन्दरता में पुनर्जन्म ले—जैसे "प्लेटो" ने कहा था।

वर्ड्सवर्थ ल्यूसीग्रे की सुन्दरता को दिव्य मानता है। यह ल्यूसीग्रे महावीर का वही पुरुष सिंह है जो ल्यूसी में जग रहा है। वह सुन्दरता को जन्म देना जान गई है। विचरते हुए बादल उसके चेहरे को लावण्य देते हैं और झरने की झरझर ध्वनि से जगा सौन्दर्य चपचप उसके रूप में उतर जाता है। वह उस अगम्य स्थिति को जान गई है जहां सौन्दर्य नित नये-नये परिधान पहन अवतरित हो रहा है। उन दिव्य अधेरों में "ल्यूसी" का पुरुष जग गया है। कौन कहता है नारी मुक्त नहीं हो सकती। वह कुमारिका जो भोगों से अपरिचित है और स्वर्ण-शिला सी कठोर देह लिये जीवन की देहरी पर खड़ी है वह अभिजात है, वह पौरुषमयी है। वह सुन्दरता को जन्म दे रही है। वह पुरुष जो उसकी ओर लालसा भरी दृष्टि से देख रहा है वह दार्शनिक परिभाषा में नारी

है। वह द्वैत का दास है। वह तरुणी नहीं। महावीर कहते हैं उस तरुणी जैसे हो जाओ जो अपने सौन्दर्य के प्रचण्ड प्रहार से अनभिज्ञ है क्योंकि वह अपने को अपने सौन्दर्य से अलग नहीं देखती। वह द्वैतमयी नहीं है। यह तारुण्य वेला जीवन में शाश्वत करना आसान नहीं है। तारुण्य तो केवल एक ट्रेलर है भव्य जीवन का। जो समर्थ है वे उसे खोज लेते हैं।

उसी सुन्दरता को प्राप्त करना मनुष्य जीवन का ध्येय है जो अन्तरजन्य है। प्रसाधन रहित यही सौन्दर्य एक दिन राजा कर्फचआ को एक भिखारिणी के प्रति भी विह्वल कर देता है। ये अनेक शक्तियां काल के आवेग है जो निरन्तर मानसिक स्थिति में विक्षोभ पैदा कर रही है और हमें बदल रही है। जो इस दुर्जेय काल को जीत लेगा वही सुन्दरता के उदगम को पा सकेगा। काल और क्षेत्र मे सीमित इस जगत की समस्त सुन्दरता Externalisation है। यह नकल है सुन्दरम् की। काल यह नकल करता है हमे भुलावे मे डालने को। यह नकल ही शरीर की तरुणाई है। यह प्रणाम शाश्वत सत्य को है काल का। बिन इस प्रणाम के काल अपना अभिनय पृथ्वी मच पर नही दिखा सकता। यह अभिनय शास्त्र की परम्परा है। अनुशासन है। परन्तु काल के अन्य समस्त रूप असुन्दर है। तारुण्य को सुन्दर मानकर जो लिप्त हो गये वे जीवनभर तरुणियों में ही उसे खोजते रहेंगे और वह उन्हे नही मिलेगा। तारुण्य ढलता रहेगा। चाह कर भी मन के बन्धन जल्दी-जल्दी खुलते बधते रहेंगे। दुखो का आस्रव होगा। महावीर कहते है तारुण्य की बेबाकी मे जिस सुन्दरम् के तुमने दर्शन किये उसका उद्गम तारुण्य नही है। उसका उद्गम काल के परे है। तुम्हारी आत्मा को प्रमाद तजना होगा। कालातीत सुन्दरम् मे पुनर्जन्म प्राप्त करना होगा। यही चरम उत्कर्ष है।

शारीरिक सुन्दरता का उद्गम तपस है। उस तप को करने से आत्मा परिष्कृत होती है। उस पर जमे पदार्थ कणो का त्याग आवश्यक है।

गृह त्याग

महावीर का गृह त्याग और सन्यास एक संकेतात्मक (Symbolic) क्रिया है। यह उस सन्यास और गृह त्याग से सर्वथा अलग है जो साधारणतः सन्यास लेने वाले सभी साधु करते हैं, चाहे वह किसी भी धर्म में दीक्षित हों। महावीर अपने परिवार से सम्बन्ध विच्छेद कर लेने को कहते हैं। प्रथम कार्य वस्त्र त्यागने के उपरान्त जो वह करते हैं वह है अपने ही हाथों से अपने केशों को उखाड़ फेंकना। सामान्य जीवन में लिप्त किसी भी व्यक्ति के लिये परिवार से सम्बन्ध विच्छेद कर लेने की बात बहुत कठोर मार्ग लगती है। किंचित् अमानवीय भी लगती है।

आधुनिक मनोविज्ञान फ्रायड और जुंग के अन्वेषणों के पश्चात् भी करीब-करीब इसी नतीजे पर पहुंचा है। जुंग स्पष्ट शब्दों में कहता है, जो आत्मा सत्य में उगना चाहती है उसे यह सम्बन्ध विच्छेद करना ही होगा। मां परिवार का केन्द्र है। प्रत्येक मनुष्य में एक स्वाभाविक प्रेरणा है मां की ओर भागने की। मां की शरण लेने की। वह सत्य का सामना नहीं करना चाहता। सत्य उसे बहुत क्रूर लगता है और मां की गोद परियों की कहानियों की तरह रंगीन और सुखद है। मां की गोद में वह राजा है, सबसे बड़ा योद्धा है। मनुष्य की आत्मा की गहराइयां इस गोद में तृप्त हो जाती हैं। इसलिये प्रत्येक मनुष्य की लोभायनि शक्ति (Libido) उसे मां की ओर खींचती है। यह लोभायनि शक्ति क्या है? यह सर्प शक्ति है। उपनिषदों में यह एक ऐसे सर्प की तरह वर्णित है जो हमारी आत्मा को घेरे हुए है। यह रूद्र है। यह हमें जीवन भी देती है और नष्ट भी करती है। इसमें दो विपरीत

धारायें साथ-साथ चल रही हैं। यह शक्ति हमें बार-बार मां की ओर खींचती है क्योंकि वहां हमें वे अजस्र स्रोत मृदुलता, प्रेम और पवित्रता के मिलते हैं जिन्हें पाकर यह पुष्ट हो जाती है। परन्तु यदि यह शक्ति मां का त्याग नहीं करेगी तो यह आक्रामक नहीं होगी। यही वह शक्ति है जिसे लेकर एक तीर्थंकर मोक्ष के लिये कूच करता है। मा का त्याग कर देने के बाद यह शक्ति अपने को एक शून्य में पाती है। वह सुखद अतीत तथा पूर्वजों के जीवन में मिलती अमृतधारा, जो मा के प्रति आसक्ति के कारण हमें सहज सुलभ है, वह सन्यास लेने पर, मा से सम्बन्ध विच्छेद कर लेने पर समाप्त हो जाती है। उसके पश्चात् आत्मा अपने को एक शून्य में पाती है। यह क्रूर यथार्थों का शून्य है। मधुर दुलार में ढका जीवन मा से सम्बन्ध विच्छेद करते ही खत्म हो गया। अब आत्मा भयानक अंधकार में अकेली खड़ी है। हर यथार्थ क्रूर, पैने दांत निकालकर पिशाचों की तरह हंस रहा है। भयानक शीत, ऊष्णता और हिंसक पशु आत्मा को चारों ओर से घेर लेते हैं। आत्मा की इस स्थिति को भारतीय ऋषियों ने तपस्या कहा है। इन भयानक अतिरंजित यथार्थों का सामना महावीर ने १२ वर्षों तक किया और तब उनकी आत्मा यथार्थों से मुक्त हुई। तब उन्होंने उस सत्य को जाना जो यथार्थ और स्वप्न दोनों से भिन्न है। यह उनकी आत्मा का पुनर्जन्म है मा के ही गर्भ से। जुंग कहता है कि इस तरह पुनर्जन्म प्राप्त कर बिरले मनुष्य अलौकिक साहस का परिचय देते हुए अमर जीवन की प्राप्ति करते हैं। आज का मनोविज्ञान बताता है कि इस तरह सांकेतिक (Symbolic) गृह त्याग प्रत्येक गृहस्थ के लिये एक सफल जीवन की प्राप्ति हेतु अत्यन्त आवश्यक है। इसके बिना आत्मा की लहर चट्टानों से नहीं टकराती, आगे के मार्ग नहीं खोजती।

महावीर का केश लोच भी इसी से सम्बद्ध एक सांकेतिक क्रिया है। केश सूर्य शक्ति लिबिडो के प्रतीक हैं। केशों के इस महत्व को बाइबिल में भी सेमसन की कहानी के रूप में स्वीकार किया गया

है। यह मनुष्य के शौर्य और बल के प्रतीक हैं। उसकी जीवन शक्ति के प्रतीक हैं। महावीर इन केशों को उखाड़कर उस जीवन शक्ति से विदा ले रहे हैं। स्वेच्छा से अपने उस जीवन की मृत्यु कर रहे हैं जो उन्हें अपने परिवार से, माता से, मिला। उस शौर्य और बल का त्याग कर रहे हैं जो उन्हें अपने वंश से मिला। वे जानबूझ कर एक मृत्यु में प्रवेश कर रहे हैं ताकि इस तल पर मरकर पुनर्जन्म हो आन्तरिक अकेलेपन में, जहां कोई भी पूर्वज सहारा देने को न हो। कोई भी अन्य पैतृक शक्ति उनकी अकेली आत्मा को मार्ग दिखाने या प्यार करने को न हो। अज्ञान का महातिमिर हो और अकेली उनकी आत्मा हो। हजारों हिंसक शत्रु हों और अकेले शिशु जैसी आत्मा हो। इस तरह महावीर अपने पराक्रम को, अपने पौरुष को ललकार रहे हैं। इस तरह वे वीर से महावीर हो रहे हैं। इस कारण बार-बार उनके शब्दों में तपस्या एक नकारात्मक (Negative), प्रतीप-गमन (Regression) अपने में ही घुस जाना नहीं है। तपस्या एक वीरता का कार्य है। एक सिंह का पराक्रम है। यह कितना कठिन है, यह बात केवल तभी जानी जा सकती है जब हमारी लोभार्यनिशक्ति (Libido) मा से सम्बन्ध विच्छेद कर ले।

मा से सम्बन्ध विच्छेद कर लेने के बाद महावीर पुनः मा से मानसिक पुनर्जन्म प्राप्त करते हैं। यही निर्वाण है। वे केवल-ज्ञान रूप उस माता को खोजते हैं जिससे मिली शक्ति और प्रेम उन्हें बाधते नहीं वरन् मुक्त करते हैं।

इस प्रसंग में हम नारी के प्रति महावीर के विचारों को और अच्छी तरह समझ सकते हैं। नारी का परित्याग महावीर सुझाते हैं क्योंकि उसकी कोमलता, उसका दुलार और सुखद साये आत्मा को निश्चेष्ट करते हैं। उसे आगे बढ़ने से रोकते हैं। उसमें यथास्थिति की कामना प्रबल हो जाती है। यह कामना अपने में झूठी, दुःख और निराशा की कारण है क्योंकि जो इस सुखद साये में बैठ जाते हैं काल उन्हें

भी नही छोड़ना । बार-बार महावीर गौतम से कहते है जागो क्योंकि काल एक क्षण के लिये भी तुम्हे नहीं छोड़ता । तुम कितना ही नारी के सुखद सायों में रहकर इस स्थिति के शाश्वत होने की कामना करते रहो परन्तु स्थिति परिवर्तित अवश्य हो जायेगी । अतः मां, प्रिया या अन्य किसी भी रूप में नारी द्वारा दिया गया प्रेम और कोमलता का आश्वासन असत् है । काल उसे परिवर्तित कर देगा, उसमें समय के साथ वह बात नही रहेगी । महावीर के कहने के मायने यह नहीं कि तुम नारी के प्रति क्रूर और विमुख हो जाओ क्योंकि वह तुम्हे झूठी कोमलता के साये दे रही है । महावीर इस बात से परिचित है कि नारी जो कुछ सुन्दरतम् दे सकती है, दे रही है । इसके लिये वे उसके प्रति कोमल है । उनकी कोमलता इसी बात मे प्रगट है कि केवल ज्ञान के बाद वह सकल्प करते है कि वे प्रथम आहार एक नारी से ही लेंगे । वह तो हमें उस कटु लॉछना या आरोप से बचा रहे है जो प्रत्येक पुरुष बाद मे नारी पर आरोपित करता है कि इसका प्रेम झूठा था या इसने मुझे बढ़ने नही दिया । वे कह रहे है कि जान लो विडम्बना यह नही है कि नारी कुछ नही देती । विडम्बना यह है कि जो कुछ वह दे रही है वह इतना मधुर और कोमल है कि आत्मा यदि थोडी भी मग्न हुई तो सो जायेगी और जीवन व्यर्थ हो जायेगा । वे नारी से हमेशा-हमेशा के लिये सम्बन्ध तोड लेने को नही कहते । वे कहते हे कि इन सामारिक सम्बन्धों के महत्वहीन और अलसाने वाले सही रूप को समझो । इसके पश्चात् इन कोमलताओं से हीन घने वनों में अपनी अकेली आत्मा पर समस्त शक्तियो के उपद्रवों को अकेले सहो । तब तुम्हारी आत्मा मे धावक उत्पन्न होगा । आत्मा पराक्रमी, पौरुषमयी और स्वावलम्बी होगी । उसके पश्चात् ज्ञान का यज्ञ शुरू होगा । तब वही नारी शक्ति केवल-ज्ञान के रूप में आत्मा की मा होगी । इस प्रकार आत्मा का पुनर्जन्म नारी से ही होगा । परन्तु केवल-ज्ञान रूप मे नारी के साये वैसे नही होंगे जो आत्मा को सुला सके । यह बात ध्यान देने

योग्य है कि इसके बाद ज्ञान में जो वाणी भगवान महावीर ने प्रगट की उस जिनवाणी को जैन आज तक माता कह कर सम्बोधित करते हैं। मातृशक्ति की उपासना जैनों में भी है इसका इससे अधिक सबल प्रमाण ढूंढना निरर्थक है।

इससे स्पष्ट है कि महावीर का दर्शन न तो नारी को शूद्र, गंवार कहता है, न नर्क का द्वार। वह उन ज्ञानपिपासुओं की तरह नहीं है जो नारी की सीमाएं देखकर बौखला उठते हैं और उसे अपशब्दों से लाद देते हैं। महावीर हमें कदम-कदम पर सत्यग्राही होने को आमन्त्रित कर रहे हैं। वह कहते हैं कि पुरुष का स्वभाव है कि वह नारी से बहुत अधिक उम्मीद लगाता है। यह उसकी प्रकृति में निहित है। नारी की कोमलता और स्नेह उसे अमृत तुल्य लगते हैं। अमर और शाश्वत जीवन का अनुभव उसे नारी के सानिध्य में मिलता है। महावीर कहते हैं कि नेत्र खोलो। यह अनुभव सत्य नहीं है। यदि नेत्र नहीं खोलोगे तो कल तुम्हीं नारी की निन्दा करोगे और उसे छलना कहोगे। अपने स्वभाव में बसे इस अनिरंजन आवेग को पहचानो। इसमें नारी का दोष नहीं है। तुम्हारी ही प्रकृति वह सैटिसफाइंग सेन्स है जो नारी को अत्यन्त कोमल और सत्यं, शिव, सुन्दरम् स्वरूप बनाकर तुम्हें महसूस कराती है। कल जब यथार्थ बताता है कि वह ऐसी नहीं है तो तुममें उसके प्रति कटुता संचरित होती है और इस तरह पुरुष और नारी युगों से और भी दूर-दूर होते आये हैं। इस कोमलता में जीकर पुरुष और नारी एक नहीं हो पाते। महावीर उस मार्ग की ओर इशारा कर रहे हैं जिस पर चलकर वे एक हो सकते हैं। नारी के इन कोमल मायों को त्यागना होगा ताकि तुम्हें नारी में सच्ची और शाश्वत कोमलता के साये मिल सकें। जो इस तरह खोना नहीं जानते वह पाना भी नहीं जानते।

प्रकृति की विचित्र प्रयोगशाला–दुर्गुणों को कोमियागरी

ज्यों-ज्यों हम जीवन के अनुभव प्राप्त करते हैं एक विचित्र बात हम सबके साथ घटती है। हमारा लोगों में से विश्वास खत्म होता जाता है। बचपन में माता-पिता की हर बात हमें देववाक्य लगती थी। फिर गुरुजनों के साथ ऐसा रहा। पर युवा होते-होते, अनुभवों के साथ अविश्वास प्रकृति में बढ़ता गया। प्रशासन में, व्यापार में, सब जगह जहाँ भी मनुष्य स्थित है, उसे जो अनुभव मिल रहे हैं वे सब अविश्वास जगा रहे हैं। यह अविश्वास ही कारण है—व्यक्तियों के आइलैण्ड बन जाने का, मोनाड्स (monads) बन जाने का। सब अलग-अलग होते जाते हैं, बन्द खिड़कियों वाले मकानों की तरह जिनके बीच कोई संचार नहीं। इससे प्रत्येक मनुष्य दुखी है। कोई नहीं चाहता कि उसका जीवन अकेला पड़ जाय। सब चाहते हैं पूर्ण जीवन प्रवाह में एक होना, इसके स्पन्दन, अनुभव, अनुभूतियों में अपने को सतत् प्रेरित किये रखना। पर इसके लिये हमारे जीवन में विसर्जन की क्षमता होनी चाहिये, दार्शनिक मृत्यु को प्राप्त करने की तकनीक मालूम होनी चाहिए। इसके लिये औरों पर विश्वास होना जरूरी है। परन्तु जीवन-यात्रा में हमें उपलब्धि हो रही है मनुष्यों पर अविश्वास की। फिर कैसे हम अपने जीवन के अकेलेपन को दूर कर सकते हैं? न सही मोक्ष, जीवन को तो मनुष्य की तरह सुधार लें, एक दूसरे से सहयोग करके, एक दूसरे के प्रति उदारता, प्रेम, सहानुभूति, दया, क्षमा को सक्रिय रूप में अपने भीतर आवेगों की तरह महसूस करके। इससे जीवन निष्प्रयोजन तो नहीं होगा, रिक्त तो नहीं

होगा। महावीर कहते हैं कि वही जीवन मोक्ष-मार्ग है जो पूरी संवेदनाओं, सहानुभूति, दया, क्षमा व प्रेम के आवेगों को व्यक्त कर रहा है। यही पूरी तरह जीना है। यही जीवन को वह 'हां' (yes) है जो नीत्से का सुपरमैन जरथुस्ट्र कहना चाहता है। परन्तु यह सम्भव कैसे हो? ये सारे आवेग तो रुक गये हैं शरीर में जैसे किसी मंत्र के असर से पूरे नगरवासी पत्थर के हो गये थे। इसी तरह ये आवेग पत्थर के हो गये हैं। सब स्थिर हैं। इसका एक मात्र कारण यह अविश्वास की पूंजी है जो अनुभवों की तिजारत में हमारा जीवन कमा रहा है। इस पूंजी का एक मेरु पर्वत हमारी नाभि में उग रहा है। इससे टकराकर सारे मानवीय भावनाओं के आवेग लौट जाते हैं। वे आवेग जो हमारे जीवन को मोड़ देते, जो हमें महसूस कराते कि हम जी रहे हैं, वे इस मेरु पर्वत पर अपने सिर पटक कर लौट जाते हैं। अतः वह प्रेम, सद्भावना, मैत्री जो हम बाद के वर्षों में लोगों को देते हैं सब व्यापार, डिप्लोमेसी के रूप हैं। उसमें न वह सहजता है, न आत्मीयता है जिसके बिना जीवनतरु सूख रहा है। पर सारे मनुष्य विवश हैं क्योंकि अविश्वास का मेरु नाभि में उठ गया है इसे कैसे हटायें। इसे नज़रअंदाज करते हैं तो यथार्थ में पांव उखड़ जाते हैं। एक काल्पनिक दुनियां में हम जीने लगते हैं। औरों से नाते और भी टूट जाते हैं। सामूहिक जीवन पर हम कोई असर नहीं डाल सकते। हमारा जीना जीवन-प्रवाह में कोई अच्छी तरंग पैदा नहीं करता। हम जीवन को बिना अर्घ दिये कृतघ्नों की भांति चले जाते हैं। इसके अलावा हम असफल भी रहते हैं। यह कहना कि दुनियां में बेईमान, झूठे, चापलूस ही सफल होते हैं कुछ जंचता नहीं। वे इसलिये सफल होते हैं कि सच्ची वेदना, सहानुभूति, प्रेम रखने वाले दुनियां में रहते ही नहीं। ये लोग कम से कम झूठी रंगीनियों ही से जीवन को मुलायम किये हुए हैं। इस दुनियां से भाग जाना, क्योंकि यह झूठी और बंध का कारण है, युक्तिसंगत बात नहीं। दुनियां है क्या? सोती हुई चेतनाओं का सागर। इससे हम कहां जायेंगे? जंगलों में भी यह है। हिमाच्छादित चोटियों पर भी यह है।

महावीर इससे भागने की बात नहीं कहते। वे व्यवहारिक दार्शनिक हैं। उन्होंने कहने से पहले अनुभव किया है। वे मनुष्य के संकट और समस्या को पहचानते हैं। वे उसे अच्छे आचरण की एक आदर्श लिस्ट नहीं देते कि इनका अभ्यास कर। वे उन उल्टी शक्तियों, उल्टे अनुभवों को ही छूते हैं जो उसे जीवन-यात्रा में हो रहे हैं और जो चीज़ उसे जकड़ रही है, उसके जीवन-प्रवाह को रोके हुए है, उसे ही उसके पार उतरने की नाव बनाते हैं। अब उसमें अविश्वास का मेरू खड़ा हो ही रहा है तो इसका प्रक्षालन (catharsis) कैसे हो? महावीर उससे यह नहीं कहते कि औरों पर अविश्वास मत कर। वे कहते हैं कि एक क्षण को भी औरों पर विश्वास मत कर। परन्तु इसे तुरन्त दार्शनिक तल पर ले आते हैं। क्यों विश्वास न कर ? क्योंकि संसारी मनुष्य एक मूर्च्छा की नींद ले रहे हैं। उनका विश्वास यदि आरोपित करेगा तो वह भी सो जायेगा।

प्रक्षालन (Catharsis)

इस तरह जो चीज हमें साधारण जीवन के अनुभवों में मिल रही है—अविश्वास—उसका महावीर प्रक्षालन कर रहे हैं दार्शनिक तल पर। यह बात समझने की है। रोजाना के जीवन में मिला यह विष रोजाना के जीवन में ही हम व्यक्त कर रहे हैं। यह विष उगलने जैसा है। इससे किसी का कल्याण नहीं हो रहा है। उससे तो लोग और दूर-दूर चले जाते हैं। यह ऐसा ही है कि हम कूड़ा पड़ोसी के घर के बाहर डाल दें। वह नाराज होगा और बैर बढ़ेगा। परन्तु यदि किसी गत्ता मिल से contract हो जाय और हम सारा कूड़ा वहां भेज दें तो इस गन्दगी का प्रक्षालन हो गया और एक बड़ी काम की चीज बन गई। इसी तरह यह अविश्वास जो सामान्य जीवन में मिल रहा है इसका प्रक्षालन दार्शनिक तल पर करें। यह तल सर्वथा व्यक्तिगत है और उसमें इतनी मशीनें व उपकरण हैं कि क्षणभर में इस अविश्वास की कायाकल्प हो जायगी। दार्शनिक तल पर यह पहुंचेगा अविश्वास बनकर परन्तु वहां से बाहर निकलेगा जागृति, जागरूकता बनकर, उल्लसित चेतना बनकर। साधारण लोग जब हमसे मिलेंगे तो उन्हें हमसे अविश्वास नहीं मिलेगा बल्कि एक सदा सजग चेतना मिलेगी जिसके सम्पर्क मात्र से उनमें स्फूर्ति होगी, स्पन्दन होगा, ऊर्जा जगेगी। वे भी अंधकार में अलसाये पौधों की तरह सूर्य की रश्मियों के लिये हाथ ऊपर करेंगे। इस तरह अविश्वास की धारा एक काम की चीज हो जायेगी। अविश्वास का विष हममें जरा नहीं रुकेगा। हमारी प्रकृति उससे घटेगी नहीं बल्कि वह अविश्वास आत्म-जागृति के लिये Raw material बनेगा। वह अग्नि बनेगा जिससे उपग्रह छोड़े जाते हैं। जब सभी मनुष्य अविश्वास का मूल्य समझ

लेंगे और उसे आध्यात्मिक जागृति का साधन बनायेंगे तो फिर एक स्थिति आयगी कि अविश्वास पैदा होना खत्म हो जायगा। वे कारण ही शेष हो जायेंगे जिनसे मनुष्य मनुष्य पर अविश्वास करता है। मनुष्य जो भी करेगा वह अपनी दुर्जेय आत्मा को जीतने के उद्देश्य से होगा। तब मनुष्य को मनुष्य से पीड़ा हो सकती है पर अविश्वास नहीं जगेगा। अविश्वास का एकमात्र कारण यह है कि अधिकांश मनुष्य अपनी दुर्जय आत्मा को जीतने के लिये जीवन समर में प्रवृत्त नहीं होते बल्कि उसकी निरंकुश, अमानवीय पिपासा शान्त करने के लिये आते हैं और इसके लिये उन्हें औरों का शोषण करने, औरों को दास बनाने में जरा भी लज्जा नहीं लगती। महावीर जानते हैं कि यह बहुत दूर की कल्पना है। ऐसा दिन मुश्किल से ही आयेगा जब सभी मनुष्य जाग जायें। अतः उन्होंने रास्ता दिया उनको जो जाग रहे हैं। वे उन्हें सम्बोधित कर रहे हैं। चारों ओर से बरसते इस अविश्वास से कुण्ठित मत होओ। इसे मोक्ष का साधन बनाओ। आओ मैं तुम्हें इस विष के उपयोग का तरीका सिखाता हूं।

श्रावक

इसके साथ महावीर का दूसरा विचार हमारे सामने आता है । वे कहते हैं कि सुनना एक कला है। एक अच्छे श्रोता बनो। अच्छा श्रावक होना मोक्षमार्ग है । अविश्वास क्यों होता है ? हमें दूसरों का स्वार्थ नजर आने लगता है उनके कर्मों में। उनकी बातों में हमें उनका स्वार्थ दीखने लगता है। उनके स्वार्थ से हमारा स्वार्थ टकराने लगता है। महावीर कहते हैं कि अच्छे श्रोता बनो। यह अविश्वास का मेरु दूसरों की बात सुनने नहीं देगा। ऐसे विचार हममें उत्पन्न होते हैं जो कानों को अवरुद्ध कर देते हैं। जो कहा जा रहा है उसे सुनने नहीं देते या उसे इस तरह इन्टरप्रेट करके हममें प्रविष्ट करते हैं कि अर्थ का अनर्थ हो जाता है। अविश्वास इन शब्दों का विरोध न करे और ये दोनों एक दूसरे का सत्कार करें। इसी तरह हमारे स्वार्थ एक दूसरे का सम्मान करें। स्वार्थ तो सब स्वार्थ हैं। हमारा स्वार्थ दूसरों के स्वार्थ से श्रेष्ठ होते हुए भी अपने को उसी तल पर समझें। हम पायेंगे कि अविश्वास, सुनी बातें, मेरा स्वार्थ, दूसरों का स्वार्थ—ये चारों चीजें दरअसल एक शक्ति का सहयोग कर रही हैं। यह है असत की शक्ति। परन्तु इस तल पर नियम यह है कि जितना ये चार रूप एक दूसरे का सहयोग करेंगे उतना ही एक दूसरे को neutralize करेंगे। जितना एक दूसरे का विरोध करेंगे उतने ही एक दूसरे को बल देंगे। माया का विस्तार ऐसा ही है जैसे कोई चोरों का ग्रुप ऐसी युक्ति करे कि जैसे ही उनमें कोई पकड़ा जाय लोगों की भीड़ में घुसकर दूसरे साथी उसे पीटने लगें। लोगों को उन पर शक नहीं होगा। थोड़ा पीटकर वे अपने साथी को छुड़ा ले जायेंगे। माया के इन चार रूपों का पारस्परिक विरोध भी छद्मभरा है। महावीर

व्यवहारिक है। वे कहते हैं कि नहीं माया के इन चारों रूपों को neutralize कर दो। बिजली का करेण्ट तभी तक है जब तक positive और negative है। सब यदि positive हो जायं तो करेण्ट नहीं बनेगा और कुल शक्ति neutralize हो जायगी। महावीर कहते हैं कि इस बात को पहचानो। अपना स्वार्थ जो शुभ हो तो भी उसे दूसरों के स्वार्थ के समतल रखो। इन दोनों के बीच बसे सहयोग को पहचानो और उसे खुलकर व्यक्त होने दो। इसी तरह अविश्वास और सती बातों को एक तल पर रखो और इनके बीच छिपे सहयोग को पहचानो तो तुम पाओगे कि तुम्हारी ही आत्मा ये चार प्रपंच रच रही है। तुम्हें वे ही शब्द सुनने को मिलेंगे जो तुम्हारे अविश्वास को neutralize कर सकेंगे। तुम्हें वैसे ही स्वार्थ मिलेंगे जो तुम्हारे स्वार्थ को neutralize कर सकेंगे। इस तल पर आत्मा मर जायगी, ऐसी मृत्यु जिसे दार्शनिक जानते हैं। यहां दीया बुझते ही जोत एक गहरे सूक्ष्म तल पर जगेगी और तुम्हारी दुर्जेय आत्मा और सरल और integerate होकर जगेगी। इन चारों से लड़ो मत। ये तो असत् हैं। असत् से लड़ना या उसे अपनाना दोनों ही उसे सत् बनाने के उपक्रम हैं। इसी उपक्रम से आत्मा अपने पर "पैरासाइट" बैठा रहा है स्वयं मूर्ख बन रहा है। जो सच्चा श्रावक है वह इस प्रकार विकारों से भी प्रकाश लेना सीख लेगा। आखिर ये सब एक स्पेक्ट्रम के ही तो रंग हैं। इनसे लड़कर इन्हें अलग अस्तित्व क्यों देते हो और फिर क्यों उन्हीं से घिरते हो? इन्हें लौटा दो उस एक दुर्जेय आत्मा में जिसने इतने विलक्षण खिलौनों से अपना बाज़ार सजाया है।

सम्यक् चरित्र

महावीर अहिंसावादी है केवल प्राणियों के प्रति दया के कारण नही। वे विचारों जिदों की हिंसा को भी हिंसा ही कहते है। वे जानते है कि प्रहारो मे जिद नष्ट नही होगी। वह और रूपान्तरित हो जाती है। ऐसे रूप भी लेती है जिन्हे हम पहचान भी नही पाते। एडलर जुग आदि मनोवैज्ञानिको ने आज इसे सिद्ध भी कर दिया है। फिर क्या किया जाय? क्या इनमे कोई छुटकारा नही ? क्या जीवन भर इन घृणित प्रवृत्तियो को व्यक्त करते रहना होगा? नही। महावीर यहा एडलर जग मे आगे दिशाबोध कराते है। जो करुणामय है उसका उपदेश किसी ऊँचे मच से नही होगा। वह विलक्षण पुरुष मोक्ष की देहरी से लौट आया है। वह छू रहा है मानवता की दुखती नस को। वह उसके सक्रामक रोगो से भयभीत नही है, न उनसे घृणा करता है। कुछ भी नही है इस प्रपचमयी जगती मे जो उन्हे shock दे सके। मनुष्य जीवन की मूढता, व्यर्थता, रुग्णता का खेल उन्होंने हजारों वर्षो मे देखा है। वे उसके लिये मनुष्य को लज्जित नही करते। वे उससे कहते है कि जानो कि ये विकार किसी स्वास्थ्य के रूपान्तर है। जिस तरह ये unfold हुए है उसी तरह वापिस उसी एक दुर्जय आत्मा मे लीन भी हो सकते है। पर अब ये लीन हो सकते है केवल सुलझकर। इन्हे सुलझाओ। साहस के साथ यथार्थ की आखों मे आंखे डाल दो। तुम जानोगे कि इस Practical joke के पीछे जो छुपा है वह इतना कटु नही है। यह वही दुर्जय आत्मा है जो बिना ईश्वर की तरह ज्ञानी हुए उसी ईश्वरीय खेल को पृथ्वी पर खेल रहा है। जब वह यह खेल बन्द कर देगा और इसकी निरर्थकता जान लेगा

तो उसकी दार्शनिक मृत्यु हो जायगी। उसकी जगह आत्मा एक और उच्च रूप लेकर प्रगट होगी। यह तिलिस्म जो मनोवैज्ञानिक तल पर फैला है इसे छिन्न करने का मार्ग ही महावीर बता रहे हैं। जब तक इस तिलिस्म को अलादीन छिन्न नहीं करता तब तक चिराग की बात करना मूर्खता है। चिराग तक पहुंचने के लिये अदम्य साहस की जरूरत है। जिनके पास कान हैं वे सुन लें—बाइबिल में बार-बार मसीहा कह रहा है। महावीर कहते हैं—धर्मश्रवण अति दुर्लभ है। कान तो परनिन्दा सुनना चाहते हैं। यह परनिन्दा ही positive है अविश्वास के साथ। जीवन में जो यह मनुष्यों के प्रति अविश्वास हमारे मन में जग रहा है और नाभि में उठ रहा है इसे परनिन्दा सुनने की जरूरत है। इसे रोको मत। बस यह जानना जरूरी है कि ये दोनों एक दूसरे का सहयोग करके एक दूसरे को neutralize कर देंगे। अपने स्वार्थ और दूसरों के स्वार्थ को positive कर दो, सहयोगी कर दो। तब ये बादल हट जायेंगे। तब स्वतः धर्म हमारे कानों में प्रविष्ठ हो जायगा।

मनुष्य की विकृति है स्वार्थ। इसी से अविश्वास प्रकट होता है। इसी को देखकर हममें भी जिद में स्वार्थ जागता है। क्यों न कबीर की तरह हम उसके स्वार्थ में सहयोग की शक्ति का आह्वान करें, प्रत्युत्तर में अपना स्वार्थ न जगायें। उसका स्वार्थ तभी तक सशक्त रहेगा जब तक हमारा स्वार्थ उससे लड़ेगा। यदि सचमुच इतना जान लिया है हमने और हमारे उद्गम से स्वार्थ का जन्म खत्म हो गया है तो हमने दुर्जेय आत्मा को जीत लिया है। उसका स्वार्थ स्वयं ही नष्ट हो जायेगा।

बाइबिल में कहा है "Resist not evil" यह केवल नकारात्मक नहीं है। यह सक्रिय है। अर्थात् उस व्यक्ति के प्रति सद्-कामना है, द्रोहहीनता है। इससे बुराई को बल नहीं मिलता। जो बुरा करे उनके लिये भला कर। अर्थ ये कि उनके लिये बुरी कामना मत कर।

स्वयं ही बुराई नही पनपेगी। उसे बुराई कहकर अस्तित्व मत दो। वह parasite की तरह है जो सत् पर अपने को बैठाना चाहता है। ईश्वर ने मनुष्य आत्मा को अच्छा ही बनाया है। यह असत् है जो अनेक विकृत रूप लेकर उस पर बैठना चाहता है। इन विकृतियों के अस्तित्व पर आत्मा विश्वास न करे। इन्हे बादलों मे बनते हाथी और घोड़ों की तरह निःसार समझे। तब आत्मा मे इनके प्रति विरोध न जन्मेगा और वह अपने सच्चे पथ पर लगी रहेगी। यदि इन्हे सत्य मान लिया तो इनसे लड़ने मे जिन्दगी गुजर जायेगी। आत्मा मे, मन् मे भी ये ही विकार आ जायेंगे। आत्मा को अविचलित रहना है दुनिया की बुराइयों मे। यह सन्यास है। सच्चा सन्यासी वह है जो संसार मे निर्लिप्त है, जो संसार से घृणा नही करता। जो संसार से भागा नही है। इस तरह तो उसकी आत्मा मे घृणा और पलायन के विष अंकुर फूट पड़ेगे। सच्चा सन्यासी संसार को असत् मानता है। वह उसकी अच्छाइयोंमे नही रहता, न उसकी बुराइयोंको बुराई कहता है। वह जान गया है कि संसार अच्छा है न बुरा। संसार निर्गुण है। जो यह दीख रहा है यह वह नही है, न उसका उल्टा है। यह है ही नहीं। यह असत् है जैसे अभिनेता को छूट है कि वह कोई भी बन जाय उसी तरह इस असत् को छूट है कि वह अच्छाई, बुराई किसी का भी रूप धर कर आ सकता है। पर वह न अच्छाई है न बुराई। वह है ही नहीं। जिसने यह जान लिया वही केवल कमल की तरह कीचड़ मे निर्लिप्त रह सकता है।

"वोच्छिन्द सिणेहमप्पणो कुमुय सारइय व पाणिय"

महावीर इसे कमल सदृश आचरण बताते है सच्चे सन्यासी का।

इस संसार की बुराइयों को जो बुराई नहीं समझता, अच्छाइयों को अच्छाई नहीं समझता, जो उन्हे असत् मानता है, माया प्रपंच मानता है, हाथ की सफाई या जादू समझता है, उसकी आत्मा इससे न उत्तेजित है न प्रेरित। उसकी आत्मा अपनी शुभ्र शान्ति को अक्षुण्ण रखेगी। वह इस संसार सागर मे विचरता हुआ भी इससे निर्लिप्त

होगा। इसके मायने ये नही कि उसे अन्य प्राणियों में कोई दिलचस्पी न होगी। यह दिलचस्पी न होती तो महावीर मोक्षद्वार से लौट न आते। यह असीम करुणा क्यों है उसमें? फिर तो प्रेम के कोई मायने ही न रहते। परन्तु वे निरन्तर प्रेम भाव को महत्व दे रहे है। उसे आत्मा के विकास का माध्यम बना रहे है। जो जितना विकसित होगा वह उतना ही प्रेमी होगा। सन्यासी कोई रूखा व्यक्ति नही है। उसमें तो माधुर्य और सुन्दरता बरसती है। वह तो प्रकृति का सजग पुत्र है। वह "ल्यूमिये" है जिसने संसार के असत् जाल से मुक्त हो अपने में सुप्त माधर्य स्रोतों को जगा लिया है। ससार रूप मे जो मित्र-बन्धु आदि मिले थे वे तो इस के externalization थे। उनसे प्रभावित न होने के मायने ये नही कि उनसे उसे कुछ नही रहा। उनसे नाते तोड़ने के मायने यह नही कि वह उनसे अलग हो गया। उसने केवल उस नाइट क्लब में मिलने से मना किया है अपनी प्रिया को जहां का वातावरण उसे घुटनभरा और असत् लगता है। इसके मायने है कि एक और मिलन की तैयारी है। भीतर एक सच्ची दुनियाँ है उसमें वे अभिन्न होकर जन्म लेंगे। यह दुनियाँ आत्मा है। इसे ही प्रेम में एक हो जाना कहा है। जो संसार रूप मे, externalized रूप मे ही, प्रिय को सत् मानेगा वह सम्बन्धों की डोर से दूर उस अन्तरंग एकता को कैसे पायेगा?

मजनू ने सहर छोड़ा तू सहरा भी छोड़ दे
नज्जारे की हवस है तो लैला भी छोड़ दे।

इक़बाल इसी अन्तर्जन्म की ओर इशारा कर रहा है। संसार जो चीज़ दे रहा है उसे त्याग दे। यानि उसे सत् मत समझ वरना कागज़ के फूल हाथ लगेंगे। उसे ग्रहण नही करेगा तो वह चीज़ नष्ट नही हो जायेगी। जो है वह कभी नष्ट नही होगा। प्रिया सत् है वह कभी नष्ट नहीं होगी। उसे संसार रूप मे वरण न करके तेरी आत्मा द्वैत की भूल-भुलैया से बच जायगी। जब तू संसार रूप में उसका त्याग करेगा तो वह तेरे भीतर प्रगट होगी। वही सच्चा रूप होगा जहां दो आत्माएं एक हो सकेंगी।

आज पश्चिमी फिल्मों के जोश में प्रेमी अपनी प्रेमिका से मिलता पीछे है पहले उसके शरीर का रस पाने को व्यग्र है। उनका प्रेम रह नहीं पाता क्योंकि यह दुर्जेय आत्मा बहुत स्वार्थी है। इसका कोई मूर्ख नहीं बना सकता। रस लेने के बाद यह जान जाती है कि प्रिया के इस संसारी रूप और उसमें कोई एकता नही। जहां संयम है वहां वह ऐसी शारीरिक भूल नहीं करेगा। वह शरीर की कामना का बलिदान करेगा। जानेगा कि यह असत् की कामना थी। जो दीख रहा था उसकी कामना थी। इसमे उसका प्यार रसविहिन नही होगा। बल्कि उसके भीतर प्रिया सभी माधुर्यों के साथ जगेगी। वह इस संयम से उसे और अच्छी तरह प्राप्त कर लेगा। संयम के मायने ये नहीं कि हम औरों के और अपने बीच कोई बनावटी रोक लगा रहे हैं। हम केवल इतना जान रहे है कि औरों का जो रूप हमें दीख रहा है वह संसार-प्रपंच में पड़ी उनकी परछाई है। हम उस प्रतिबिम्ब मे मुग्ध हो रहे हैं। यदि हम उसे असत् जान लें तो उनका सत् रूप हममे ही अभिन्न हो हमारे भीतर जगेगा। वह हमारे अकेलेपन को दूर करेगा। उस स्थिति में हम उसके बाह्य रूप का रस ले सकेंगे बिना लिप्त हुए।

महावीर एक ऐसे ही प्रेमयज्ञ की बात कर रहे हैं जहां यह संसार प्रेमियों को उलझाता नही बल्कि उनके पीछे चलता है। उनके दुःख वे दुःख नहीं हैं जो संसार देता है।

"वे ग़मे रोज़गार नही है, ग़मे इश्क है"

महावीर कहते हैं कि उस ग़मे इश्क को जगा कि ग़मे रोज़गार का पता ही न रहे।

"न होता ग़मे इश्क तो ग़मे रोज़गार होता"

महावीर कहते हैं इस तरह ग़मे हस्ती मे नजात नही मिलती। जब तक प्रिया केवल शरीर दीखेगी प्रिया दर्द बनकर दिल में न जग सकेगी। दर्द न होगा तो मुहब्बत न होगी।

लोभायनि शक्ति (Libido) का वशीकरण

आज के मनोविज्ञान की सबसे बड़ी खोज है लोभायनिशक्ति। इस रूप में स्वयं रुद्र मनुष्य में उपस्थित है। महावीर का अनुशासन यद्यपि लोभायनिशक्ति का जिक्र नही करता परन्तु उसका सार इस शक्ति को नियंत्रित करने में है। एक बात महत्वपूर्ण है वह यह कि फ्रायड और जुंग ने लोभायनिशक्ति को जिस रूप में जाना महावीर उससे अधिक पहले ही व्यक्त कर चुके है। यदि महावीर विचारधारा का आज का मनोवैज्ञानिक मनन करें तो वे उस निराशा और असहायता से मुक्त हो जायेंगे जो फ्रायड और जुंग के चिन्तन ने उन्हें दी। इन्होंने लोभायनिशक्ति को एक ऐसी जीवन इच्छा कहा है जिसमें जीवन इच्छा और मृत्यु इच्छा दोनों हैं। जीवन के पूर्वार्द्ध में जीवन इच्छा बलवती रहती है और उत्तरार्द्ध में मृत्यु इच्छा। इस विचारधारा के अनुसार प्रौढ़ता को प्राप्त होने के पश्चात् यह अवश्यंभावी है कि मनुष्य के विचार, कर्म और इच्छाएं जीवन विरोधी हो जायें।

इन्होंने लोभायनिशक्ति को एक भयानक सर्प के रूप में देखा जिस पर न तो चेतन काबू पा सकता है न अचेतन। लोभायनिशक्ति को नियति या भाग्य भी कहा है जिसके आगे मनुष्य का वश नहीं चलता। यह चाहे तो दो मित्रों को मिला दे या चाहे सबको हमारे विरुद्ध कर दे।

महावीर का दर्शन इसके विरुद्ध है। वे यह नहीं मानते कि जीवन के पूर्वार्द्ध में मनुष्य की जीवन इच्छा जीवन के पक्ष में होती है

और उत्तरार्द्ध में मृत्यु के पक्ष में। महावीर लोभायनिशक्ति को मनुष्य का भाग्य विधाता या क्रूर शासक नहीं मानते। फ्रायड और जुंग के मर्मभेदी दर्शन और अकाट्य तथ्यों से निराश हुए आज के मनुष्य के लिए अभी आशा है महावीर के दर्शन में क्योंकि महावीर के विचारों को यदि फ्रायड और जुंग की शब्दावली में रखा जाय तो एक शक्ति है जिसे यह क्रूर, नृशंस और मनमानी चलने वाली लोभायनिशक्ति प्रणाम करती है और पूरी तरह उसके वश में हो जाती है और वह शक्ति है प्रेम। महावीर बार-बार प्रेम पर जोर दे रहे हैं क्योंकि मानसिक तल पर सबसे सशक्त लोभायनिशक्ति को केवल प्रेम देवता ही मान्य है। जब मनुष्य की आत्मा में प्रेम का उदय होता है तो लोभायनिशक्ति मनमानी करना छोड़ देती है। उसकी मृत्यु चाह सतत् जीवन चाह में बदल जाती है क्योंकि यह सतत् जीवन चाह मृत्यु के दुखों को अपने में लीन कर लेती है। लोभायनिशक्ति में इच्छाओं का यह द्वैत मिट जाता है। मनुष्य की आत्मा परिवर्तन हो जाती है। मृत्यु चाह के दूर होते ही दुर्वासनाएं, क्रूरता, कुशील, हिंसा, वैर, द्वेष आदि मनुष्य की आत्मा से दूर हो जाते हैं क्योंकि ये सब मृत्यु चाह के ही रूपान्तर हैं। महावीर इसी मृत्यु को जीतने की बात जीवन भर अपने शिष्यों से कहते रहे। आज पश्चिम का प्रौढ़ व्यक्ति समझता है कि वह स्वभाव से आयु के कारण जीवन और आनन्द विरोधी है और उसे युवा वर्ग की अठखेलियां और उच्छृंखलताओं को बर्दाश्त करना चाहिये। वह समझता है कि वह उनकी आलोचना केवल ईर्ष्यावश करता है। उधर युवा वर्ग समझता है कि उसके सभी कर्म जीवन की खुशियों और इच्छाओं के प्रतीक हैं और उनमें कुछ भी कल्पित नहीं है। यह फ्रायड और जुंग की देन है जिन्होंने कहा कि जवानी तक लोभायनिशक्ति जीवन के पक्ष में रहती है और उसके बाद मृत्यु के पक्ष में हो जाती है। इससे युवा वर्ग और वृद्धता के बीच खाई बन गई है और मनुष्य जाति का मानसिक विकास रुक गया है। इस रुके पानी को चलता

करने के लिए महावीर कहते हैं कि बुढ़ापा शरीर को ग्रस्त करता है। मानसिक शक्तियों से उसका सम्बन्ध नहीं। इसी तरह जवानी शरीर को आती है। जवानी के मायने यह नहीं कि मानसिक शक्तिएँ जरूर जवान होंगी। महान अंग्रेज कवि बायरन जवानी में मरा था और उसकी पोस्टमार्टम रिपोर्ट में पाया गया था कि उसका दिल और दिमाग़ एक बहुत बूढ़े आदमी के हो गये थे। महावीर कहते हैं कि एक वृद्ध व्यक्ति भी तरुणों की तरह जीवन की उमंगों से भर सकता है जैसा कि हम सबकी आंखों ने नेहरूजी को देखा। जिस व्यक्ति की आत्मा में प्रेम का जोश सबल होकर उठता है वही व्यक्ति लोभायनि-शक्ति को वश में कर सकता है। लोभायनिशक्ति यदि भयानक नागिन है तो प्रेम वह मधुर बीन बजाने वाला है जो उस नागिन को वश में कर लेता है। लोभायनिशक्ति यदि प्रकृति है तो प्रेम पुरुष है।

सृष्टि (Cosmology)

सन् १९५० के बाद विज्ञान की दुनियां मे एक नया विचार होएल, बोंदो, गोल्ड आदि ने दिया। उन्होंने कहा कि पदार्थ की निरन्तर रचना हो रही है सृष्टि में। इससे पूर्व वैज्ञानिकों का ख्याल था कि नया पदार्थ नहीं रचा जा रहा है। सृष्टि में पदार्थ जितना था उतना ही है केवल एक पदार्थ दूसरे में रूपान्तरित हो जाता है। परन्तु एक यह नया विचार था जिससे विस्तृत होती दुनियां (Expanding universe) का ख्याल पैदा हुआ। होएल ने बताया कि लगभग सोलह सौ करोड़ वर्ष पहले एक विशाल हमारी दुनियां जैसी ही दुनियां थी जो नष्ट हुई और उसकी समस्त ऊर्जा शक्ति (Energy) एक अंगूठे के बराबर जगह में केन्द्रित हो गई। यही से नया पदार्थ सृष्ट होता रहता है।

यह एक हैरत की बात है कि हजारों वर्ष पूर्व सृष्टि के सम्बन्ध में जो तीर्थंकरों ने कहा वह बात विज्ञान सन् १९५० में पकड़ सका। तीर्थंकर निगोद तत्व का जिक्र करते है। यह पदार्थ की वह स्थिति है जब वह पदार्थ भी नहीं बन सका है। यह अदृश्य है। इसे पदार्थ का आरम्भिक रूप कहा जा सकता है। इसे अत्यन्त कष्टप्रद भी कहा है। सम्भवत: यह वही अंगूठे के बराबर जगह है जिसमें समस्त पदार्थ पदार्थ बनने से पूर्व की स्थिति में ठूंसे पड़े है। पदार्थ के आरम्भिक रूप की परिभाषा आइंस्टिन ने भी यही की है। वह उसे शक्तियों की एक सतत् बेचैनी (A constant agitation of energies) कहता है। उसके अनुसार भी पदार्थ का यह आदि रूप अदृश्य है हवाओं और शक्तियों की तरह।

इस निगोदावस्था में रहने के बाद जीव पृथ्वी, जल, अग्नि आदि

बनकर प्रकट होता है। उसके बाद वह पेड़, पौधे आदि जीव बनकर प्रगट होता है। इस तरह उसका विकास क्रम चल रहा है। मतलब यह है कि ये चरण हैं स्वयं जीव के विकास के। तीर्थंकर जीव के विकास के सिद्धान्त को प्रस्तुत करते हुए बता रहे हैं कि एक स्थिति उसकी वह थी जब वह पत्थर के रूप में भी नहीं था; जब वह अदृश्य पदार्थ के रूप में था। यह समझना कि जीव शरीर में स्थित आत्मा को कहते हैं और शरीर उससे भिन्न है एक भूल होगी। वास्तव में जब तक हम जीव रूप में अपने को अनुभव करते रहेंगे तब तक शरीर से सर्वथा भिन्न शुद्ध, चेतन किसी सत्ता की कल्पना करना सत्य से दूर जाने के समान होगा। जैनदर्शन दार्शनिकों की इस भूल को नहीं दोहराता। उसके अनुसार ज्ञान के मायने हैं कि जीव अपने को पदार्थ से अलग एक सत्ता के रूप में जानता और महसूस करता जाय। जब वह उस स्थिति में होगा जहां सूक्ष्म से सूक्ष्म कर्म पदार्थ भी उसे अपने से भिन्न नजर आने लगेंगे और उनके बीच वह अपनी स्वतन्त्र सत्ता को जान लेगा वह क्षण उसके निर्वाण का होगा। उस क्षण जीव की दार्शनिक मृत्यु हो जायेगी और उसकी जगह हम में आत्मा प्रगट हो जायेगी। जीव के मायने हैं आत्मा का वह विकृत रूप जो अपने को पदार्थ से भिन्न नहीं समझता। एकेन्द्रिय जीव अपने को पदार्थ से बिल्कुल भी भिन्न नहीं समझता। दो इन्द्रिय जीव अपने को भिन्न समझने लगता है। पचेन्द्रिय जीव यानी मनुष्य अपने को पृथ्वी, जल, वनस्पति आदि से तो भिन्न समझता है परन्तु शरीर से भिन्न नहीं समझता। इस कारण वह जीव है। जब आत्म-ज्ञान द्वारा वह अपने को शरीर और उसके कर्म जाल से सर्वथा भिन्न समझ लेता है और उसका इनके प्रति मोह टूट जाता है तो जीव का अस्तित्व समाप्त हो जाता है। उसके टूटते ही हममें ज्ञानमय आत्मा प्रगट हो जाती है। जब तक पदार्थों के प्रति किसी न किसी रूप में मोह बना रहेगा, चाहे पदार्थ कितना भी सूक्ष्म हो, हममें जीव की सत्ता बनी रहेगी। जीव होना ही भवचक्र में बंधे रहना है।

उपरोक्त विवेचन से यह बात तीर्थंकरों की विचारधारा के अधिक अनुकूल प्रतीत होती है कि निगोद रूप में जीव और पुद्गल एक ही है। इस तल पर जीव अपने को उन अदृश्य शक्तियों से बिल्कुल भी भिन्न नहीं समझता जो पदार्थ का आदि रूप है अर्थात् जीव और पुद्गल में पूर्ण एकता है। यह एक निम्न स्तर की एकता है जहाँ जीव मूर्छित है और अपनी स्वतंत्र सत्ता को बिल्कुल नहीं पहचानता। इस तल पर द्वैत नहीं है। जब तीर्थंकर कहते है कि पत्थर मे जीव है तो लोग हंसते है कि उसमें आत्मा कैसे हो सकती है परन्तु तीर्थंकर यह नहीं कह रहे है कि पत्थर मे आत्मा है। वे यह नहीं कह रहे है कि निगोद मे आत्मा है। वे कह रहे है निगोद मे जीव है, पत्थर मे जीव है। जीव के मायने उस जीवन से व्यक्त होना नहीं है जिसे जीव शास्त्र समझता है। एक जीवन और है जो जीव शास्त्र का विषय नहीं है। वह बढ़ने, घटने, उगने आदि जीवन जैसी क्रियाओ से मुक्त है। वह स्थिर जीवन है। इस मान्यता के अनुसार जीव का निगोद शरीर ही जीव है। इसके मायने यह हुए कि निगोद तल पर जीव और पुद्गल में भेद नहीं है। अतः जितना निगोद पदार्थ है वह स्वयं जीव है। तीर्थंकरों की मान्यता के अनुसार निगोद से जीव निरन्तर उच्च अवस्था में यानी पृथ्वी, जल आदि रूपों मे विकसित हो रहा है। पृथ्वी, जल आदि रूपों मे भी जीव अपने को अपने शरीर से भिन्न नहीं समझता। यानी यह कहना गलत होगा कि पत्थर में जीव है। यह कहना तीर्थंकरों की विचारधारा के अधिक निकट होगा कि पत्थर स्वयं जीव है। यह जीव की वह स्थिति है जब वह जरा भी चेतन नहीं हो पाया है और पूर्णतया मूर्छित है।

एक क्रम चल रहा है जिसके अनुसार कुछ जीव निगोद से पृथ्वी, जल आदि रूपों मे विकसित होते रहते है। इससे जाहिर है कि पृथ्वी, जल आदि पदार्थ निरन्तर बढ़ रहे है। यही सिद्धान्त विस्तृत होती दुनिया का है। इसे ही हॉयल पदार्थ की निरन्तर रचना के सिद्धान्त के रूप में प्रस्तुत करता है। इस दृष्टिकोण से जैन द्वैतवाद वेदों के एकत्व के सर्वा-

धिक निकट प्रतीत होता है। सम्भवतः एकत्व का इतना सुन्दर और वैज्ञानिक निरूपण अन्यत्र कहीं नहीं हुआ। जीव व पुद्‌गल की अलग सत्ता शुरू में नहीं है। शुरू में निगोद और पृथ्वीकायिक रूपों में जीव व पुद्‌गल एक हैं। उनमें कोई भिन्नता नहीं। परन्तु ज्यों-ज्यों उच्च अवस्थाओं में जीव चेतन होता जाता है त्यों-त्यों उसे पुद्‌गल अपने से भिन्न नज़र आने लगता है। उसकी चेतना द्वैत की उत्पत्ति करती है। अन्ततः जब वह पुद्‌गल को अच्छी तरह पहचान कर पूरी तरह अपने से अलग कर देता है तो वह आत्मा बन जाता है। इस रूप में वह पुनः द्वैत भाव से मुक्त हो जाता है। पुद्‌गल के सभी सूक्ष्म रूपों को जब वह अपने से भिन्न जान लेता है तो वे सभी रूप उसकी चेतना से अलग हो जाते हैं। वे होकर भी उसके लिए नहीं रहते। वह सर्वथा स्वतंत्र हो जाता है। इस तरह पूर्णतया चेतन हो जाने पर न जीव रह जाता है न पुद्‌गल। आत्मा के तल पर दोनों केंचुलियों की तरह हो जाते हैं जिन्हें आत्मा पीछे छोड़ चुकी है।

महावीर का यह विचार कि पृथ्वी और जल में भी जीव है कोई नई बात नहीं है यद्यपि इसे सुनकर अधिकांश दार्शनिकों को बड़ा आघात लगता है। यह विश्वास तो मनुष्य जाति की आदि सम्पदा रहा है। ग्रीक, जर्मन, इजीपशियन, मैक्सिकन, सभी प्राचीन सभ्यताएं इस विश्वास के नीचे पली हैं। जर्मन महाकवि गेटे अपने विख्यात काव्य 'फाउस्ट' में पृथ्वी की आत्मा (The spirit of Earth) का आव्हान करता है। इसी तरह यूरोप में हिकेट (Hecate) को संसार की आत्मा (World Spirit) कहा है। इसके अतिरिक्त अग्नि की आत्मा, जल की आत्मा, पत्थरों की आत्मा, पर्वतों की आत्मा के अस्तित्व को अनेक धर्मों और प्राचीन कथाकारों ने माना है। हिमालय और विंध्याचल तथा समुद्रों की आत्माओं के अस्तित्व को प्राचीन भारतीयों ने भी स्वीकार किया है। पचभूतों की आत्माओं को भी भारत में तथा अन्य देशों में भूतात्मा (Elemental Spirits) के नाम से मान्यता दी

गई है। महावीर का दर्शन सभ्य और असभ्य मान्यताओं को दो भागों में नहीं बांटता। उन्होंने मनुष्य के चेतन और अचेतन के सभी अंधेरे और उजले तत्वों को अर्थ दिया है। उन्हें उनकी सही जगह दिखाई है जिससे मनुष्य के मानसिक क्षितिज पर कुहासा बनने के बजाय वे उसके उत्तरोत्तर विकास में सहायक बनें।

इस तरह हम देखते है कि जीव के तीन विशिष्ट रूप हैं। एक तो निगोद रूप जहां वह अमूर्त पदार्थ से भिन्न नही है। दूसरा वह रूप जिसे स्पिरिट् (Spirit) या चैतन्य विहीन आत्मा कहना अधिक उपयुक्त होगा। तीसरा रूप जीव का वह है जो जीवित प्राणियों मे है, जो चेतन है।

मुस्लिम विचारधारा मे भी इन रूहों (जिन आदि रूपों मे) के अस्तित्व को माना गया है। किस्सा हातिमताई आदि पुरानी अरबी कथाओं में पर्वतों की रूह (Spirits) का जिक्र है। वे पर्वत स्थिर है हजारों वर्षो मे गुफाओं मे अपनी जगह अचल खडे है। ये हिलडुल नही सकते। परन्तु हातिम जो ज्ञानी है उससे उन पर्वतों की रूह (Spirits) बात करती है। प्राचीन विश्वासों मे पूरे नगर की आत्मा का भी अस्तित्व स्वीकारा गया है। कितने ही जड पदार्थो की उपासना इस भाव मे की गई है कि उनमें भी रूह है। यह विश्वास मनुष्य के रोजाना के जीवन में कदम-कदम पर व्यक्त है। कोई भी दर्शन इसे भुठला कर या इसका दमन करके इसे विश्वास से अंधविश्वास तो बना सकता है परन्तु मनुष्य को, इससे मुक्ति नही दिला सकता। पदार्थो की रूहों मे निहित जो शक्ति है उसे मनुष्य ने आदि युग मे पहचाना था और उसका क्रमबद्ध विकास तांत्रिक पद्धतियों में किया गया। परिणाम खौफ़नाक निकले और मनुष्य जाति आज तक इन रूहों के भय की बन्दी है। दार्शनिक इस समस्या पर विचार करना अपनी बुद्धि की बरबादी समझते है। इसलिए जादूगर, प्रेत विद्या-विशारद और दूसरी काली विद्याओं में रमे हुए लोग मनुष्य की आत्मा को और भी जकड़ते जा रहे है। यह समस्या कितनी

विकट हो चली है इसका अन्दाज़ा इसी बात से लगाया जा सकता है इंगलैंड आदि यूरोपिय देशों में चुड़ैल-विद्या (Witch-craft) वि: विश्वालयों में विषय बनाई गई है और बहुत से युवक और युवतियां : ज्ञान को अर्जित करने के लिए और पदार्थों की रूहों को कब्ज़े में करने लिये तरह-२ के रहस्यमय मार्गों पर लगे हुए हैं। सम्भवत: महावीर पश्चात् केवल फ्रायड और जुंग ही ऐसे विचारक हुए जिन्होंने इन बा को अंधविश्वास कहकर इन पर सोचने से इंकार नहीं किया बल्कि इ सृष्टि में इनकी सही जगह पर रखा जिससे मनुष्य की चेतना इन भयभीत या ग्रस्त न हो और न इनसे मोहित हो। इस संदर्भ में १ आवश्यक है कि हम महावीर के विचारों को समझें क्योंकि अब नई पी को अंधविश्वासों की गहराई में उतरने से नहीं रोका जा सकता। आ मनुष्य की चेतना वह नहीं है जो दस वर्ष पूर्व थी। आज यह कह देना f यह अंधविश्वास है पर्याप्त नहीं है किसी को किसी चीज़ से हटाने : लिए। आज मनुष्य की चेतना दूसरे प्रश्न कर रही है। वह पूछती है f यह अंधविश्वास क्यों सामूहिक रूप से हमारी चेतना पर बैठा है? आ से पहले लोग समझते थे कि अंधविश्वास को अपनाना व्यक्ति की अपन भूल है। परन्तु अब मनोविज्ञान ने बता दिया है कि बड़े-बड़े बुद्धि मान वैज्ञानिकों के जीवन भी अनेकों ऐसे अंधविश्वासों से ग्रस्त है ज उन्होंने स्वयं नहीं अपना रखे हैं। वे उनसे बचना चाहते हैं। वे जानते ह कि यह अंधविश्वास है। परन्तु फिर भी अंधेरे घाव की तरह वे अंध विश्वास स्वत: उनके अचेतन से उठ आते हैं और उनके मन-मस्तिष्क क मलिन कर देते हैं।

यही बात पदार्थों के प्रति बढ़ती आसक्ति में निहित है। आज क दुनियां में अधिकांश लोग आत्मिक तत्व की श्रेष्ठता को मानते हैं वैराग्य भाव से प्रेरित होकर हजारों पाश्चात्य युवक और युवतिएं घरों से निकल पड़े हैं बिना कोई पदार्थ साथ लिये। परन्तु उनसे बात करने पर पता चलता है कि पदार्थ का भूत उनके अचेतन में उठकर उन्हें जकड़

रहा है। पदार्थ उनमे छूट नही पा रहा है और मनुष्य और भौतिकवादी हुआ जा रहा है। यह कह देना कि उनकी साधना मे कमी है या उनका आध्यात्मवाद ढकोसला है प्रश्न का उत्तर नही है। मनोविज्ञान ने नये क्षितिज खोल दिये है। मालूम होता है कि पदार्थ एक रहस्य भी है जिसे केवल मानसिक रूप मे त्यागकर हम उससे मुक्त नहीं हो सकते।

महावीर का दर्शन सभी पदार्थो को जीव की हेरारकी (Hierarchy) मे स्थान देकर उन्हे एक निम्न स्तर का जीव बनाता है। यही तरीका पदार्थ से पूर्णतया निर्लिप्त और मुक्त होने का है। पदार्थ और जीव का द्वैत इस ज्ञान से कट्टर द्वैत नहीं रह जाता।

महावीर का सृष्टि ज्ञान पूरी सृष्टि को एक विकास क्रम (Evolutionary Process) में देखता है। यह विचार हक्सले, लेमार्क, बर्गसा आदि आधुनिक विकासवादियो के हृदय के निकट है। आज के जीवशास्त्रवेत्ता खगना आदि लेबोरेट्री मे पदार्थो के सयोग से जीवित तत्त्व को बनाने की रहस्यमय कोशिशो मे लगे है। उनका विश्वास है कि जीवित शरीरों और पदार्थो के बीच केवल विकास की ही दूरी है। जिस दिन वे प्रयोगों द्वारा अपने इस विश्वास को सिद्ध कर सकेंगे, महावीर को समझने मे हमे और आसानी होगी। यह विशाल दृष्टिकोण, सत्य-ग्राहिता और निरपेक्ष नजर, जो महावीर मे जगी, मनुष्य जाति की महानतम उपलब्धि है। महान अंग्रेज नाटककार जार्ज बर्नार्डशा, जो अत्यन्त अहम्वादी और स्वतत्र विचारो का जनक था और जिसने पूर्ववर्ती किसी भी महापुरुष को अपने समान नहीं स्वीकारा वह भी महावीर के व्यक्तित्व को प्रणाम करता है। उसने स्पष्ट शब्दो मे स्वीकार किया है कि तीर्थंकरों की विचारधारा वह अकेली सम्पत्ति है जिसमे उसे अपने विचारों की पूर्ण प्रतिध्वनि मिलती है।

एक विशेष ऐतिहासिक तथ्य है जिस पर न तो इतिहासकारों ने प्रकाश डाला है न दार्शनिकों ने। वह तन्त्र से सबधित है। तत्र विद्या बौद्ध, हिन्दू, मुस्लिम और ईसाई सभी धर्मो ने अपने-अपने ढग से

विकसित की। मध्यकाल में एक ज़माना ऐसा भी आया जब तांत्रिकों का ज़ोर बहुत बढ़ गया था और साधारण नर-नारी उनके भय से आतंकित रहते थे। आज भी जो हमारे समाज में भ्रष्ट साधुओं का भय और ज़ोर है वह उसी का प्रतीक है। महावीर की विचारधारा में तंत्र कोई भी उपद्रव नहीं कर सका। यह एक विलक्षण तथ्य है कि जैनाचार्यों ने तंत्र का गहन अध्ययन और विकास किया परन्तु जैन विचारधारा में विकसित हुए तन्त्र ने कभी भी साधारण नर-नारियों को भयभीत नहीं किया। अधिकांश लोग तो यह भी नहीं जानते कि जैन तंत्र नाम की भी कोई चीज़ है। परन्तु कोई भी जैन मन्दिर ऐसा नहीं है जिसमें धातु की गोल-तश्तरियें भगवान की मूर्ति के पीछे न मिलें। उन तश्तरियों पर तन्त्र विधिएं और मंत्र उत्कीर्ण हैं। जब अन्य धर्मों में तन्त्र के ज़ोर से भय और असर पैदा करके, भूत शक्तियों को जगा कर, साधारण मनुष्य को इन करिश्मों से अपने मार्ग पर खींचने की प्रवृत्ति सारी दुनिया में ज़ोर कर रही थी उस समय तीर्थंकरों के अनुयायी तंत्र का प्रयोग मनुष्य को उन भयों से मुक्त करने में कर रहे थे। कहना न होगा कि आज जो साधारण नर-नारी तंत्र को धर्म और आत्मोन्नति की चीज़ न समझ अवरोध समझने लगे हैं, इस चेतना के जगने में सबसे अधिक हाथ महावीर के शिष्यों का रहा। एक गुप्त ज्ञान को प्राप्त करके, उसे केवल मनुष्य की भय-मुक्ति के लिए प्रयुक्त करना और फिर उसे काल के गर्भ में छुपा देना—यह महान उदारता और लोभहीनता जिस परम पुरुष के पद-चिन्हों पर चल कर जैनाचार्यों को प्राप्त हुई वह पूरी मनुष्य जाति के लिये वन्दनीय है।

पशुबलि

सभी जानते हैं कि महावीर ने पशुबलि का विरोध किया। परन्तु यह विषय केवल अहिंसा से ही सम्बद्ध नहीं है। महावीर के इस विरोध के पीछे भारतीय जाति की चेतना के विकास का एक अत्यन्त प्रकाशमय क्षण छिपा है। हमें यह नहीं भूलना चाहिये कि महावीर के पश्चात् वैदिक धर्मावलम्बियों ने भी पशुबलि छोड़ दी। यह तभी संभव हो सकता था जब महावीर के विचारों ने केवल उनके विचारों का खण्डन न किया हो बल्कि महावीर ने स्वयं उनके साथ मिलकर इस समस्या पर विचार किया हो, और उनकी चेतना को कोई ऐसा मार्ग सुझाया हो जिसके प्रकाश में पशुबलि के पीछे छिपा दर्शन फीका और बेजान लगने लगा हो।

पहले तो हमें जानना होगा कि पशुबलि का विधान क्या था। यह केवल देवताओं को प्रसन्न करने के लिये पशुओं का रक्त चढ़ाने की परंपरा नहीं थी। ऋग्वेद १० : ८१, ५ के अनुसार बलि देने वाला उस पशु में प्रविष्ट कर जाता है जिसकी वह बलि दे रहा है। यही एक बुद्धिमान बलि देने वाले की परिभाषा कही गई है। इसी तरह ऋग्वेद १० . ९० में वर्णित किया गया है कि किस तरह स्वयं देवताओं और पशुओं ने मिल-कर पुरुष की बलि दी। यह पुरुष कोई साधारण मनुष्य नहीं है। ऋग्वेद के अनुसार यह पृथ्वी को चारों ओर से घेरे हुए है। इस पुरुष के अतिरिक्त पृथ्वी पर कोई अन्य प्राणी न था। उस बलि के पश्चात् समस्त पशु और प्राणी, सूर्य और चन्द्रमा, इन्द्र, अग्नि और वायु का जन्म हुआ।

इस तरह वैदिक बलिदानों के पीछे मनोवैज्ञानिक तत्त्व था, वह यह कि हम स्वयं अपना बलिदान करें किसी पशु के माध्यम से ताकि हमारा पुनर्जन्म उसी देवता में हो जिसके आगे हम बलिदान कर रहे

है। इसका उद्देश्य था मनोवैज्ञानिक आत्मा को निरन्तर शुद्ध करना और उसे देवता के, स्वयं ईश्वर के, निकट करना। यह विश्वास मनुष्य जाति के लिये आम बात रही है कि इस तरह मनोवैज्ञानिक बलिदान करके हम अपने को और ताजा तथा पुष्ट कर लेते हैं। मनुष्य अपनी जंगली अवस्था में केवल जीवित रहने ही के लिये बहुत से पाप करने को मजबूर था। इस कारण उस मैल को धोना उसके लिये परमावश्यक था। उस स्थिति में मनोवैज्ञानिक सफाई का उसे एकमात्र यही तरीका नजर आया कि वह पशुओं का बलिदान करते हुए यह सच्ची भावना रखे कि वह स्वयं अपना बलिदान कर रहा है। इस तरह वह उस मनोवैज्ञानिक तल पर मर जायेगा। परन्तु मनोवैज्ञानिक तल पर मनुष्य नष्ट नहीं होता। अतः तुरन्त बाद उसका पुनर्जन्म एक और साफ़ और सथरे मनोवैज्ञानिक तल पर हो जायेगा। जिस तरह हम नये वस्त्रों के लिए लालायित रहते हैं उसी तरह प्राचीन मनुष्य नई, साफ और धुली मनोवैज्ञानिक चादरों के लिये लालायित था। उन्हें ओढ़ कर वह समझता था कि उसकी आत्मा का परिष्कार हो गया।

तीर्थंकरों की परम्परा विचारों की वह पहली कड़ी है जिसने मनुष्य के इस भ्रम को तोड़ा, उसे स्पष्ट यथार्थ से परिचित किया कि इस तरह भावना से पशुओं में अपना बलिदान करके वह जिस चीज़ की प्राप्ति कर रहा है वह आत्मशोधन नहीं है। वह केवल नये कपड़े हैं जो आत्मा को मिल रहे हैं, जिनसे आत्मा का अपना मैल दूर नहीं होता। इस पर हिंसा कर्मों का एक और मैल चढ़ता जा रहा है। भले ही मनोवैज्ञानिक वस्त्र कितने ही उजले हों।

महावीर ने बलि के पीछे छुपे सभी अर्थों को ध्वस्त कर दिया। उन्होंने इस महान गल्प (myth) को विस्फटित (explode) कर दिया। यह ध्यान देने योग्य है कि महावीर के पश्चात् आर्य परम्परा में कोई भी महान् दार्शनिक किसी भी मत का नहीं हुआ जिसने पशुबलि को मान्यता दी हो। अश्वमेध यज्ञ आदि की परम्परा आर्यसंस्कृति

से हमेशा के लिये लुप्त हो गई। भारतीय जनमानस में सत्य का यह सितारा बहुत गहराई तक धंस गया। साधारण से साधारण हिन्दू भी यह जान गया कि पशुओं की बलि से पाप मिलता है आत्मा का परिष्कार नहीं होता। इस तरह महावीर और उनसे पूर्व के तीर्थंकर हमें हजारों वर्ष पूर्व उस सभ्यता के सूर्य की ओर ले गये जिस तक पहुंचने में पश्चिम को हजारों वर्ष और लगे।

यदि हम बृहदारण्यक उपनिषद् १:१ देखें तो उसमें जिस ढंग से अश्वमेध यज्ञ का ज़िक्र किया गया है उससे प्रगट होता है कि यह संसार त्याग का संकेत (Symbol) है। जब अश्व की बलि दी जाती है तो हम संसार की बलि दे रहे हैं, जिस तरह के संसार से हम चिपटे हुए थे आज तक उसका हम बलिदान करते हैं। इस विचार को प्रसिद्ध जर्मन विद्वान् पोल्डयूशेन ने बहुत सुन्दर और विस्तृत ढंग से अभिव्यक्त किया है। शोपेनहावर ने भी बृहदारण्यक की इस विचारधारा का ज़िक्र किया है। परन्तु श्रेवर पहला पश्चिमी विद्वान है जिसने इसको एक बीमार दिमाग की उत्पत्ति कहा था। वास्तव में ऐसा प्रतीत होता है कि वैदिक काल भी आर्य जाति के मस्तिष्क और आत्मा की चरम स्थिति का काल नहीं था। अनार्यों के साथ निरन्तर युद्ध करने के कारण आर्य जाति का मनस ढीला, विकृत और मैला हो गया था। ये इतिहास से प्रगट है कि भारत के मूल निवासी अनार्यों को मार कर और खदेड़ कर और उनके साथ अत्याचार करके आर्यों ने अपनी सत्ता स्थापित की। अपने उस पाप को छुपाने के लिये कभी उन्होंने अनार्यों को राक्षस कहा, कभी दस्यु, कभी दानव। उनकी स्त्रियों का तो वरण कर लिया परन्तु उनसे सामाजिक सम्बन्ध स्थापित नहीं किये। ये अनेक ज्यादतियाँ थी जिनका भार आर्यों की आत्मा पर था। इस कारण उन्होंने पशुबलि आदि असभ्य परम्पराओं को मान्यता दी।

हाइनरिख ज़िमर और सिल्वानलेवी आदि विद्वानों ने अपनी खोज से सिद्ध कर दिया है कि जैन धर्म वेदों से हजारों वर्ष पुराना है।

जैन परम्परा तो स्वयं इस बात को अर्से से कहती आई है। वेदों में स्वयं ऋषभदेव आदि तीन तीर्थंकरों के नाम पूज्य व्यक्तियों की श्रेणी में उल्लिखित हैं। इसके साथ मोहनजोदड़ों आदि की खुदाई से प्रगट होता है कि भारत के मूल निवासी जैन धर्म के अनुयायी थे। इससे यह बात सिद्ध होती है कि प्रागैतिहासिक युग में जब आर्यों और अनार्यों के झगड़े सत्ता हेतु नहीं हुए थे और मनुष्य निर्विघ्न रूप से सभ्यता की ओर बढ़ रहा था उस समय उसके विचार सत्य के अधिक निकट थे क्योंकि तब वह समस्त मनुष्य जाति के कल्याण की बात और अच्छी तरह सोच सकता था। तीर्थंकरों की परम्परा में रंग, वर्ण, जाति के भेदों से मुक्त विचारधारा के बीज बसे हैं। वे अनार्यों के भी गुरु थे और आर्यों के भी। उनकी पूजा दोनों ने समान रूप से की। अतः निश्चय ही उनका दर्शन वह विलक्षण सत्य अपने में रखता था जो द्वन्द्वरत इन दोनों जातियों को समान रूप से अपील कर सकता था। बिहार के भील और जयपुर के पास के मीना गूजर जिस श्रद्धा से आज भी तीर्थंकरों की उपासना करते हैं वह याद दिलाती है उस प्रागैतिहासिक युग की जब अनार्य भी निर्भय होकर अपने वैभवशाली प्रासादों और नगरों में तीर्थंकरों का जयघोष करते थे।

मनुस्मृति इसकी साक्षी है कि जैन धर्म वेदों से प्राचीन है और युग के आदि में स्थित था। उसमें विमलवाहनादिक मनु और जैन कुलकरों के नाम लिखे हैं। निम्न श्लोक प्रथम जिन ऋषभदेव को मार्ग दर्शक तथा सुरासुर दोनों के द्वारा पूजित कहता है :—

कुलादिबीजं सर्वेषां प्रथमो विमलवाहनः।
चक्षुष्मान् यशस्वी वाभिचन्द्रोऽथ प्रसेनजित् ॥१॥
मरुदेवी च नाभिश्च भरते कुल सत्तमाः।
अष्टमी मरुदेव्या तु नाभेजति उरुक्रमः ॥२॥
दर्शयन् वर्त्म वीराणां सुरासुरनमस्कृतः।
नीतित्रितयकर्त्ता यो युगादौ प्रथमो जिनः ॥३॥

यजुर्वेद के निम्न उद्धहरण से भी स्पष्ट होगा कि आर्यों से पूर्व भारत में ऋषभदेव, अरिष्टनेमि, सुपार्श्व आदि तीर्थंकर अनार्यों द्वारा भी पूजे जा रहे थे। उन्हें वेदों ने भी पूज्य कहा। उनकी तपोज्जवलता और अमोघ सत्यता का प्रमाण इसके अतिरिक्त क्या हो सकता है कि परस्पर दुराग्रह और बैर से ग्रस्त आर्य और अनार्य दोनों ही उन्हें समान भाव से पूजते रहे।

ॐ ऋषभपवित्रं पुरुहूतमध्वरं यज्ञेषु नग्नं परमं माहसंस्तुतं वरं शत्रु जयंतं पशरिंद्रमाहुतिरिति स्वाहा। ॐ त्रातारमिंद्रं ऋषभं वदन्ति। अमृतारमिंद्रं हवे सुगतं सुपार्श्वमिंद्रं हवे शक्रमजितं तद्वर्द्धमानपुरुहूतमिंद्रमाहुरिति स्वाहा। ॐ नग्न सुधीर दिग्वाससं ब्रह्मगर्भ सनातनं उपैमि वीरं पुरुषमर्हंतमादित्यवर्ण तमसः परस्तात स्वाहा।

ॐ स्वस्तिन इन्द्रो वृद्धश्रवा स्वस्तिनः पूषा विश्ववेदाः स्वस्तिनस्तार्क्ष्यो अरिष्टनेमि स्वस्तिनो बृहस्पतिर्दधातु। दीर्घायुस्त्वायबलायर्वा शभाजाताय। ॐ रक्ष रक्ष अरिष्टनेमिः स्वाहा। वामदेव शान्त्यर्थमनुविधीयते सोऽस्माकं अरिष्टनेमिः स्वाहा।

भारत में आर्य परम्परा जहां संस्कृत वेद वाणी बनकर खिलती रही और आर्यों को सत्यान्वेषण में प्रवृत्त करती रही वहां इस परम्परा से बहुत से नुकसान भी हुए। अनार्यों के प्रति जो बैर आर्यों में था वह अनार्यों के विश्वास और ज्ञान के प्रति भी बढ़ता गया। इससे आर्यों का ज्ञान एकांगी हो गया। पूर्ण सत्य से आर्य महरूम रह गये। इसके दण्ड स्वरूप आर्य चेतना के दो टुकड़े हो गये। एक तो पूषान, इन्द्र, बृहस्पति, रुद्र आदि देवताओं के प्रकाश में अंधकार से प्रकाश की ओर बढ़ता गया। परन्तु चेतन का दूसरा टुकड़ा उतना ही अन्धविश्वास, ग्राम्य देवी-देवताओं, टोनों-टोटकों की गजलकों में बंधता गया। कालान्तर में यह भेद भारतीयों के विश्वासों और कर्मों में भीषण विरोधाभास बनकर प्रगट हुआ। शायद इतिहास इस जाति के प्रति इतना क्रूर न हुआ होता

यदि राजनैतिक वैर भाव ने अपने पूर्वजों से मिली सम्पत्ति के प्रति यह दुराव बरतने की हमें प्रेरणा न दी होती। शंकराचार्य ने और बाद के चिन्तकों ने जैन विचारधारा को वैदिक विचारधारा से बिल्कुल अलग और वेद विरोधी कह कर इस जाति का बहुत नुकसान किया। इस विषय पर बहुत कुछ कहने को है और उसपर बोलने से एक अलग ही विषय बनने का भय है। यही कामना करता हूं कि किसी दिन हमारी जाति जैन और वैदिक ज्ञानधाराओं को अपने में समान रूप से समाते हुए इस लम्बी ऐतिहासिक भूल की शृंखला को तोड़ देगी। जैन विचार धारा के प्रति इस द्वेष से पूर्व कभी आर्योंमे इसके प्रति सही मूल्यांकन और आदर भाव जरूर रहा होगा जिसका आभास यजुर्वेद और मनुस्मृति के उपरोक्त उदाहरणों में मिलता है। इस प्रकरण को समाप्त करने के लिए योगवशिष्ठ के निम्न उद्धरण से सुन्दर अन्य उद्धरण उपलब्ध नहीं है :—

"नाहं रामो न मे वांछा भावेषु च न मे मनः।
शांतिमास्थातुमिच्छामि स्वात्मन्येव जिनो यथा ॥१॥

(अर्थात् मैं राम नहीं हूं, मेरी कुछ इच्छा नहीं है और भावों वा पदार्थों में मेरा मन नहीं है। मैं तो जिनदेव के समान अपनी आत्मा में ही शान्ति स्थापना करना चाहता हूं)।

हिन्दी साहित्य और महावीर

(महावीर जयन्ती पर २२.४.७५ को आकाशवाणी, दिल्ली से प्रसारित वार्ता)

हिन्दी साहित्य की आत्मा में जो पूज्य पुरुष बसे हैं वे हैं राम, कृष्ण, महावीर और नानक। जहां राम हिन्दी के मर्यादा मूल हैं वहां कृष्ण प्रेम और शृंगार के स्रोत हैं। महावीर मानवीय मूल्यों के उद्गम हैं और नानक कर्मप्रेरणा के अविरल प्रवाह। जो हिन्दी इन मनीषियों से प्रेरित है उसकी आत्मा सर्वाङ्ग सम्पन्न है तो इसमें कोई आश्चर्य नहीं।

महावीर हिन्दी साहित्य में तप, त्याग, करुणा, प्राणियों से प्रेम आदि भावों की आत्मा हैं। जिस तरह मनुष्य शरीर में आत्मा के दर्शन नहीं होते परन्तु आत्मा ही शरीर का सार है उसी तरह महावीर नाम लिखे हुए हिन्दी साहित्य में बहुत कम पढ़ने को मिलता है परन्तु लिखने के पीछे जो मनोदशा है उसके कण-कण में महावीर बसे हैं।

यह कहना उपयुक्त होगा कि महावीर विषय हिन्दी को इतना प्रिय है कि उसने उसे अपने हृदय में छुपा कर नेत्र मूंद लिये हैं। जो पढ़ना चाहें, जो उसकी लज्जा को समझते हैं वे उसे हिन्दी के रोम-रोम में देख सकते हैं।

यह एक भारतीय परम्परा रही है कि हर प्रिय चीज़ को परोक्ष रूप से ही प्रकट किया जाता है। देवता भी परोक्ष प्रिय हैं। इसी तरह महावीर को नाम से नहीं सिद्धान्तों से हिन्दी ने अपने कण-कण में अभिव्यक्त किया है। हिन्दी साहित्य में जो नायक-नायिका के मूल गुण हैं वे सब महावीर की क्षमा, दया, सहिष्णुता, प्रेम और त्याग की

अनुकृतियें हैं। हिन्दी में राम और महावीर के अतिरिक्त शायद ही कोई ऐसा चरित्र हो जिसके गुण बार-बार नायकों के गुण बनकर कवियों व लेखकों की वाणी में उतरे हों।

श्रमण ज्ञानियों ने हमेशा ही बोलचाल की भाषा को प्राथमिकता दी। केवल संस्कृत में ही ग्रंथ रचना करना जैन कवियों को कभी प्रिय नही रहा। स्वयं महावीर ने उस भाषा का प्रयोग किया जो जन-साधारण की भाषा थी। जहां संस्कृत में देवसेन सूरि, शाकटायन, जिनसेन, हरिषेण, धनंजय और हरिचन्द्र जैसे महाकवियों ने जैन आगम को गौरिकर और रसरंजित किया, वहाँ यापनीय आचार्य उद्योतन सूरि और पुष्पदन्त तथा भट्टारक धर्मभूषण, क्षेमेन्द्र कीर्ति, धनपाल आदि ने प्राकृत और अपभ्रंश भाषाओं को अपनी पवित्र आराधना से समृद्ध किया।

हिन्दी के आदि जनन में निःसंदेह जैनाचार्यों का बहुत समर्थ हाथ रहा। यहां तक कि हिन्दी का विकास, भाषा प्रवाह, मोड़ भी जैनाचार्यों ने बहुत कुछ निर्धारित किया। मुनिशीलविजय ने "तीर्थ-माला" नाम से एक पर्यटन ग्रंथ सन् १६८३ में हिन्दी में लिखा। परन्तु आज भी उसका उल्लेख हिन्दी साहित्य में नही मिलता।

यह एक विचित्र विडम्बना है कि जो साहित्य रचना जैनाचार्यों ने की वह उच्चकोटि की होते हुए भी साहित्य में उचित स्थान व आदर न पा सकी। इसका कारण सम्भवतः उस युग का श्रमणों के प्रति विद्वेष था। परन्तु अब वह युग समाप्त हो चुका है। हरिचन्द्र जैसे महाकवि को भी जिन्हे महामहोपाध्याय दुर्गाप्रसाद ने माघ की कोटि का बताया संस्कृत में उक्त संकुचित भावना के कारण उचित स्थान न मिल सका।

मानतुगाचार्य का अत्यन्त मधुर स्रोत जो भक्ति साहित्य का एक अनूठा रत्न है आज तक अपना उचित स्थान किंचित दुराग्रहों के कारण न पा सका। काल के गर्भ में बसे वे वैमनस्य इतिहास के तिमिर

में खो चुके हैं। आज उस काल्लुष्य का स्थान नही है। पूर्ण मनुष्य जाति चतुर्दिशाओं से भद्र विचारों व साहित्य को धर्म संकीर्णता से उठकर विशुद्ध सौन्दर्य परम्परा में अंगीकृत करे, यही साहित्य के भविष्य का द्योतक हो सकता है। साहित्य उद्गम सूख रहे हैं। भाषा वह भूमि है जिस पर यदि साहित्य न उगा तो अश्लील और बेहूदा साहित्य स्वतः उगेगा। भूमि उत्पन्न किये बिना न रहेगी जब तक उसमें उर्वरा शक्ति है। वह भाषा धन्य है जो धार्मिक मनोभावों से मुक्त है, जिस पर धर्म शासन नही करते अपितु वह सुन्दरम् शासन करता है जो सभी धर्मों का आराध्य है। आदिकाल से मनुष्य ने साहित्य को धर्माधीन कर रखा है। आज समय आ गया है कि इस दासता से मनुष्य मुक्त हो और सौन्दर्य का आव्हान मुक्त नेत्रों से कर सके। इस मुक्ति का सेतु बनाने के लिये आवश्यक है कि अन्य धर्मो से प्रेरित काव्य को भी हिन्दी उसी तरह मान्यता दे। इससे बंधे हुए आवेग खुलेंगे और एक क्षण में हम सभी मुक्त होंगे।

महावीर का असर हिन्दी काव्य पर परोक्ष रूप से बहुत पड़ा है। यहां तक कि चरित्रों का गठन, भावों की अभिव्यक्ति उसी कोमल सहृदय, हिंसाहीन परिवेश में है। जो महावीर ने श्रावक के लिये मान्य सिद्धान्त दिये थे वे प्रेमचन्द्र, जयशंकर प्रसाद, सुदर्शन, जैनेन्द्र आदि लब्धप्रतिष्ठित साहित्यिकों के मर्म में बहे हैं। सुन्दरम् के जिस दर्शन के लिये महावीर के प्राणों ने सभी उपसर्गो से होड लड़ाई थी वही संघर्ष अपनी सीमाओं में तुलसीदास, सूरदास, मीरा, निराला, महादेवी और पन्त का रहा है। केवल महावीर नाम से न आ सकने का कारण वह धार्मिक अलगाव और परम्परा है जिसमें इन कवियों का जन्म हुआ।

नामों की प्रतिष्ठा तो एक बाह्य अभिव्यक्ति है। साहित्य की एक आन्तरिक अभिव्यक्ति भी होती है। उस आन्तरिक अभिव्यक्ति में महावीर जगह-जगह हिन्दी को अपनी पावन चरण रज से मुक्त कर रहे हैं।

महावीर के जीवन पर हिन्दी में बहुत कम काव्य रचना हुई। वर्तमान युग में पं. अनूप शर्मा का "वर्द्धमान" और वीरेन्द्र मिश्र का "अन्तिम तीर्थंकर" दो प्रमुख कृतियें हैं। इन्हें विवरणात्मक कहना अधिक उपयुक्त होगा। वीरेन्द्र जी की भाषा परिमार्जित है और विषय के अनुरूप शैली गरिमामय है। इन दोनों ही कृतियों की विशेषता है कि ये सेक्यूलर मूड में लिखी गई हैं। किसी धर्म का प्रणेता हो जाना किसी भी महापुरुष को लगभग साहित्य से बहिष्कृत कर देना है। कारण यह है कि उसके अनुयायी उस पर जिस श्रद्धा या अन्धविश्वास के साथ लिखते हैं वह इतनी उग्र और अतिरंजित होती है कि उसमे साहित्य-सलिला नहीं बहती। इन दोनों कवियों ने महावीर को एक नायक के रूप में लिया है, एक अलौकिक दिव्य विभूति के रूप में नहीं। इन्होंने उन्हें मनुष्य जीवन की परिधि में उतारा है। यह प्रयास निःसंदेह प्रशंसनीय है। तन्मय बुखारिया और जयकुमार 'जलज' ने भी महावीर को विषय बनाकर कुछ अच्छी कविताएं लिखी हैं।

परन्तु हिन्दी का जो अंग महावीर के व्यक्तित्व से अत्यधिक सम्पन्न हुआ वह है दर्शन तथा वैचारिक साहित्य। इसमें सर्वप्रथम नाम आता है राष्ट्रपिता महात्मा गांधी का। सम्भवतः संस्कृत में या किसी भी पाश्चात्य भाषा में महावीर के अहिंसा, अचौर्य, अपरिग्रह, ब्रह्मचर्य आदि सिद्धान्तों पर इतने सरल और हृदयग्राही ढंग से नहीं लिखा गया जितना महात्मा गांधी ने हिन्दी में लिखा। गांधी जी ने हिन्दी में दर्शन साहित्य को इस तरह महावीर के सिद्धान्तों से भर दिया है कि यह कहना अनुपयुक्त न होगा कि बाद में जो भी मौलिक दार्शनिक चिन्तन हिन्दी में हुआ वह महावीर परम्परा में ही हुआ। इस दृष्टि से काका कालेलकर, महात्मा भगवानदीन, मुनि विद्यानन्द, आचार्य तुलसी, डा. सम्पूर्णानन्द, विनोबा भावे के नाम उल्लेखनीय हैं। इन सबसे अलग एक और नाम आता है आधुनिक युग के एक मौलिक चिन्तक का जिसने महावीर की पवित्र वाणी से फिर हिन्दी के वैचारिक साहित्य

को झकझोर दिया। वे है आचार्य रजनीश। इस तरह हिन्दी के दार्शनिक साहित्य पर महावीर की छाप बहुत गहरी उतर चुकी है और आश्चर्य नही यदि यही स्रोत एक नई ऐसी दर्शन-परम्परा को जन्म दे दे जो आधुनिक युग की आवश्यकताओ की पूर्ति कर सके। [१८]

हिन्दी काव्य जगत मे महावीर पर जो रचना हुई वह अधिकाशत: प्रशसको और धर्मभीरुओ की रचना है, प्रेमियो की नही। इस कारण उसमे शाश्वत तत्व कम है और वह स्थायी मूल्य की रचना नही हो सकी। रघवीर शरण मित्र ने जिस सेक्यूलर भावना से 'वीरायन' लिखा है वह एक दिशाबोध है और उस परम्परा मे होने वाली रचनाए नि.सदेह एक दिन सौन्दर्य के गहन स्रोतो को छू लेगी। जिस भावना मे सूरदास, मीरा, रसखान ने कृष्ण पर लिखा, जब तक भक्ति प्रेम के उस रजत तप तक नही निखरेगी तब तक महावीर पर पदावलिया ही लिखी जा सकती है, साहित्य रचना नही हो सकती। पश्चिम हेमिग्वे, ज्विग, दोस्तोवस्की आदि के असर मे साइकोलोजिकल सेल्फ (Psychological Self) को ही केन्द्र मानकर रचना करता रहा। इस तरह क्लासिकी तत्व सब मर गये। परन्तु हिन्दी मे प्रेमचन्द्र, जयशकर प्रसाद, निराला, जेनेन्द्र, महादेवी वर्मा, मैथिलीशरण गुप्त किसी ने भी उस "स्वत्व" या साइकोलोजिकल सेल्फ को व्यक्त नही किया। सभी उसे उस दार्शनिक सत्य की ओर ले चले है जहा मरकर उसे एक नया जीवन मिल जाता है। इस भरे सघर्षमय, जीवन-कोलाहल से हटकर मनुष्य की आत्मा हिन्दी मे निरन्तर, एक दार्शनिक पुनर्जन्म ढूढती रही है—जो सौन्दर्य से आप्लावित हो। अज्ञेय ने अवश्य इस परम्परा से हटकर रचना की थी। महावीर के आत्मनिग्रह की सवेदना गहराई तक हिन्दी मे बसी है। नारद भक्तिसूत्र मे प्रेमी की मनोदशा का जो वर्णन है वही एक सच्चे जैन का स्वरूप है। उसके अभाव मे साहित्य के फल नही मिलते।

जैसा मैने पहले कहा महावीर का इम्पेक्ट हिन्दी साहित्य पर

बहुत गहरा है। जितना भी हिन्दी के पीछे सौन्दर्य बोध या स्थेटिक कन्सेंप्ट है वह पूरा महावीर के आत्म-निग्रह (Self Restraint) या संयम से जन्य है। महावीर कहते हैं "इस दुर्दमनीय आत्मा को जीत लो।" इस अहं, स्वत्व या साइकलोजिकल सेल्फ को हिन्दी साहित्य हमेशा प्रेरित करता रहा है एक ऐसे निर्वाण की ओर जहां यह मिट जाय, इसकी दार्शनिक मृत्यु हो जाय, ताकि इसका जन्म अन्तरतम में बसे सुन्दरम् की गोद में हो। यह दार्शनिक मृत्यु (Philosophical Death) प्लेटो को भी विदित थी। पश्चिम का साहित्य लरमन्तोव, दोस्तोवस्की आदि के असर में इसे भूल गया। परन्तु महावीर के रहते हिन्दी को ऐग्ज़िस्टैंशियलिस्ट (Existialist) साहित्य नहीं बहका सकता। यह एक बहुत बड़ी देन है महावीर की हिन्दी को जिसका मूल्यांकन नहीं हो सकता जैसे सूर्य की रश्मियों का मूल्यांकन नहीं होता।

महावीर सुन्दरम् के उपासक हैं। उनकी नग्नता उसी सुन्दरता की खोज है जिसे लज्जा की आवश्यकता नहीं। परन्तु एक अन्तर है। उनका सुन्दरम् आत्मा से भिन्न नहीं है। सुन्दरता का त्याग सिखाया है महावीर ने। वह सब जो सुन्दर लग रहा है जब उसका त्याग कर देगी आत्मा तब सुन्दरता अनन्य होकर आत्मा के भीतर ही जगेगी। इस तरह हम स्वयं सुन्दरता के निर्झर होंगे, सुन्दरता के लोभी नहीं। यह त्याग भी एक कला है। जो इस कला को जानता है उसे त्यागी हुई चीज़ और सूक्ष्म होकर मिलती है। यह क्रम चलता रहता है और अन्ततः वह इतनी सूक्ष्म हो जाती है कि आत्मा ही बन जाती है।

सुन्दरता की स्थापना हिन्दी साहित्य में महावीर के इसी अन्दाज़ से हुई है। यह अन्दाज़ हिन्दी को उर्दू से बिल्कुल अलग कर देता है। ये भाषाएं मिलती-जुलती होते हुए भी सौन्दर्य बोध में भिन्न हैं। उर्दू के पीछे जो सौन्दर्य प्रपात का शोर है वह हिन्दी जैसा नहीं है। उर्दू ने सुन्दरता और प्रेमी के द्वैत को माना है। परन्तु हिन्दी की रगों में यह

द्वैत नहीं है क्योंकि विलक्षण पुरुष महावीर की उपस्थिति हिन्दीभाषियों के मनस से उस तिमिर को छिन्न कर चुकी है ।

सुन्दरता के इसी स्वरूप की कामना प्लेटो, क्रोचे, लेसिंग, बर्क, लौन जायनस ने की । वर्ड्सवर्थ जिस ल्यूसी ग्रे के सौन्दर्य से मुग्ध है उसकी आत्मा सुन्दर परिवेश में नहीं है । वह स्वयं सौन्दर्य निर्झर है । चलते-फिरते, मचलते बादल उसे लावण्य दे रहे हैं । झरनों की मीठी झरझर उसके चेहरे में उतर गई है । मौसमों का संगीत उसकी नसों में बस गया है ।

एक महापुरुष के साथ कुछ देर चल लेने के बाद कोई भी जाति फिर अपनी पूर्व स्थिति को नही लौटती । हमारी जाति भी महावीर के साथ दो पग चली है । महावीर हमारी आत्मा को अपने आलोक दे गये हैं । हिन्दी की पृष्ठभूमि में जो सौन्दर्य बोध छुपा है वह वे छींटे हैं जो केवल ज्ञान की चांदनी रातों में उस अक्षय स्रोत से गिरे थे ।

वह शालीन दिव्य घोष आज भी हिन्दी की मीनारों में गूंज रहा है । एक मान-स्तम्भ रच लिया है हिन्दी ने जिसे दूसरा महावीर ही तोड़ सकता है । अन्यथा सैकड़ों वर्षों तक भी ये मान्यताएं धूमिल न होंगी क्योंकि ये अपनायी नहीं गई हैं । स्वयं हिन्दी ही ऐसी हो गई है ।

हिन्दी का समस्त प्रेम साहित्य उस त्याग, मर्यादा और उज्ज्वलता का प्रतिबिम्ब है जो भारतीयों के हृदय में कभी महावीर सौरभ बन कर खिला था । हिन्दी साहित्य में आज भी प्रेम की मान्यताएं वे ही हैं जो महावीर की थी, जो अन्यत्व मिटा दे । जो लेना नही । सब कुछ देकर भी सोचना है मैं कुछ दे न सका । मैथिलीशरण गुप्त जिस उर्मिला का वर्णन करते हैं वह प्रेम की इसी परम्परा में पली है । यही वेदना महादेवी की है जो घनीभूत होकर उतरी है हिन्दी साहित्य की पलकों पर ।

हिन्दी का भविष्य इसी संयम में है । बर्नार्डशा ने इसी संयम से फूटते सौन्दर्य के सहस्र धारों को देखा था जब सेंट जॉन

में उसका नायक महावीर की मूर्ति के आगे नमन कर कहता है कि उसके जीवन की शान्ति का स्रोत यही है। महावीर का तप और कठिन व्रत उस कठोर चट्टान की तरह है जिससे मनुष्य भ्रमित हो जाता है कि यहां केवल कठोरता ही कठोरता है। परन्तु मीठे पानी के सारे स्रोत उन्हीं कठोर चट्टानों से चलते हैं। मिट्टी के कोमल पहाड़ों से निकले झरनों का पानी गदला होता है।

महावीर और नारी

तीर्थंकर महावीर का वह व्रत था
या दिव्य संकेत था उस मुक्त पुरुष का
प्रथम आहार ग्रहण करूंगा उस नारी से
जो हंस रही होगी निश्छल सरल आवेग में
और नयन झार रहे होंगे आंसू जिसके
पग एक बाहर होगा और एक देहरी के भीतर
अंग जकड़े होंगे लौह शृंखलाओं से

क्या संकेत कर रहा था परम पुरुष
कि देखो नारी है किस अमानुषिक दशा में
कि चन्दनबाला ही नहीं, पतित समाज में
सभी नारियें हो रही हैं बंधी चन्दनबाला सी
मनस को जकड़े हैं अदृश्य बंदियें
दुखों के झरने फूट रहे हैं नेत्रों से
फिर भी कोमल हृदय जिनके हंस लेते हैं दुख में

अन्तिम पहर रात्रि का मौन निशा थी गहन
चन्द्रमा झांक रहा था एक छोर से गगन के
थक कर तारे अलसाये, अकुला रहे थे नभ में
वेष्टित, कोमल अंग लोह शृंखलाओं से कठोर
रुधिर बह रहा था गोरी कमनीय त्वचा से
चन्दनबाला अपूर्व सुन्दरी अभागिन नवयौवना
पड़ी थी भू पर केश खोले गहन निद्रा में
दिव्य पुरुष प्रकट हुआ शिखा सा
हिमाच्छादित उत्तुंग शृंग पर मानो
उतर रही हो राजसी स्वर्णप्रभा भोर की
नत नयन, कोमल चरण, वलिष्ठ अंग, अपूर्व यौवन
सौन्दर्य प्रपात मानो नहा रहा था अपने ही वेग में
'मैं हरण करूंगा दुख तुम्हारे कोमलांगी
भूतल पर अभी चल रहे हैं चरण मेरे'

कौन कहता है नारी को अयोग्य बताया
परम ज्ञान का, दिव्य तीर्थंकर ने
अयोग्य हैं वो वेड़ियें जिनसे
जकड़ लिया है पुरुष ने इस आनन्दमयी को
अनाधिकार शासन उसके नारीत्व पर
स्वावलम्बन और आत्माधार को जगने नहीं दिया उसके
इतिहास द्रोह करता रहा नारी से

दूर करने होंगे ये तिमिर भरे अवगुंठन
विहंसने दो उस शिशु को जो छिपा है नारी तन में
सहायता करो उसकी उस पथ पर बढ़ने मे
जिस पर चली कभी मैत्रेयी, गार्गी दिव्य युग में
भयो, दुष्ट कामनाओं की गुंजलकें मत फेको उन पर
निरन्तर जकड़ रहे हो उन्हें दुष्ट चाहों से
और फिर कहते हो नरक द्वार है ये
तुमने खिलने कब दिया नारी पुष्प को धरा पे